श्रीचारित्रस्मारक ग्रन्थमाला पु० नं० ३६



# श्वेताम्बर-दिगम्बर।

## (समन्वय)

### भाग १–२

कर्त्ता—

मुनि दर्शनविजय.

प्रकाशक—

शा. मफतलाल माणेकचंद.

वीर० सं० २४६९ } मूल्यं { फ० चा० सं० २१
वि० सं० २००० } २—४—० { यी० सं० १९४३

प्राप्ति-स्थान.

१ शा. मफतलाल माणेकचंद.
पत्ता—बोरडी बजार,
मु० वीरमगाम. (गुजरात)

२ पं. कांतिलाल दीपचंद देशाई.
पत्ता—पटेलका माढ, मादलपुरा
पो. एलीसब्रीज,
मु. अमदावाद. (गुजरात)

मुद्रक :—

A भाग १ ला
राजमलजी लोढा
भारत प्रीन्टींग प्रेस. अजमेर

B भाग २ रा
हीरालाल देवचंद शाह.
शारदा मुद्रणालय, सेन्ट्रल टॉकीझ
के पांस, पानकोर नाका—अमदावाद.

## इस ग्रन्थके पूर्व ग्राहक

| प्रति | नाम | स्थान |
|---|---|---|
| १००) | श्रीमती पोपटबहिन मारफत श्रीमान् शाह सदुभाई तलकचंद. | अहमदावाद। |
| २५) | सेठ हमीरमलजी गोलेच्छा द्वारा, | जैन संघ, जयपुर। |
| १२) | श्रीमती सेठाणी सकरबाई द्वारा, | श्राविकासंघ, जयपुर। |

# प्राक् कथन

विक्रम सं. १९९५ के वैशाख–ज्येष्ठ महिनेमें हम देहलीमें अवस्थित थे। उस समय एक रोज एक बन्द लिफाफा मेरे पर आया। उसमें एक पत्र था, जिसे स्थानकमार्गी सम्प्रदायके माननीय प्र० व० पं० चौथमलजीस्वामी के साथवाले मुनि सुखमुनिजीने भेजवाया था। वह पत्र निम्न प्रकार है—

"बडौत (मेरठ) ता. ३–६–३८ इ.

"श्रीमान् दर्शनविजयजी महाराज !

"सादर वन्दन।

"निवेदन है कि + + + + + उस 'कल्पित कथा समीक्षा' नामक पुस्तक में जैनागमों के विरुद्ध जो जो बातें लिखी गई हैं उनका प्रत्युत्तर क्या आपने दिया है ! यदि नहीं तो क्यों ? क्या उन बातों का प्रत्युत्तर देनेका साहस नहीं है ? यदि है, तो कमर कस कर तैयार हो जाइयेगा। और आगमविरुद्ध तथा श्वेताम्बर समाज के विरुद्ध जो जो बातें उन्होंने लिखीं हैं उनका मुंहतोड उत्तर अवश्य दीजिएगा। तभी पंडिताई सार्थक होगी। ऐसा महाराज श्री सुखमुनिजीने फरमाया है। पत्रोत्तर नीचे के पते पर दीजिएगा।

"लाला न्यायतसिंहजी मोतीराम जैन.
मंडी आनंदगंज बडौत (मेरठ)

+ + + + +

भवदीय, दीपचन्द सुराना"

उन मुनिओंकी इच्छा थी कि मैं कुछ लिखुं। अतः मैंनें, कुछ लिखुं उसके पहिले, दिगम्बरीय शास्त्रोंका विशेष अध्ययन किया। और इस विशेष अध्ययनके फल स्वरूप, खण्डनमण्डन के रूपमें नहीं किन्तु पारस्प-

[illegible]

हिन्दी मेरी मातृ भाषा नहीं है अतः इस ग्रन्थ में [illegible] भाषा [illegible] स्वाभाविक है। आशा है पाठक उन्हें सुधार कर पढ़ेंगे।

और अनुवाद या [illegible] इस ग्रन्थ में कुछ अनुचित लिखा गया हो तो उसके लिये मैं [illegible] चाहता हूं।

ता. १. [illegible], [illegible]
[illegible]
इलाहाबाद.

[illegible] —

# श्वेताम्बर-दिगम्बर

## भाग पहिला की अनुक्रमणिका

समाप्त.

# श्वेताम्बर-दिगम्बर

## भाग दूसरे की अनुक्रमणिका

## आश्चर्य

# आधार-ग्रन्थ

**जैन ग्रंथ**

आचारांग
सूत्रकृतांग
ठाणांग
भगवतीसूत्र
उपासकदशांग
उववाई सूत्र
जीवाभिगम
पन्नवणा
अनुयोगद्वार
पयन्नय
आवश्यक निर्युक्ति
विशेषावश्यक भाष्य
उत्तराध्ययन
दशवैकालिक
बृहद् कल्प भाष्य
तत्वार्थ सूत्र
,, भाष्य-टीका
,, भाषा-
ललित विस्तरा
षड्दर्शन समु०
बृहद्क्षेत्रसमास
पंच वस्तुः
कल्याण मन्दिर
भक्तामर
प्रवचन सारोद्धार
त्रिषष्टी० चरित्र
परिशिष्ट-पर्व
योग शास्त्र
अभिधान चिंतामणि
,, राजेन्द्र
कर्मग्रन्थ
प्रबंध चिंतामणि
लोक प्रकाश
तपगच्छ पट्टावली
हीमवंत स्थवीरावली
काल संबंधी विचारणा
सम्राट खारवेल-लेख

**अखबार**

जैन
जैन धर्म प्रकाश
जैन सत्य प्रकाश

**दिगम्बर-ग्रन्थ**

अंगपन्नत्ति
अनगार धर्मामृत
आदिपुराण
आराधना (मूल)
,, विजयोदया
उत्तरपुराण
कथाकोष
बृहद् कथाकोष
पुण्याश्रव कथाकोष
आराधना कथाकोष
कल्याण आराधना
कार्तिकेयानुपेक्षा
कुंदकुंद चरित्र
कुंदकुंद गुटका
केवलिमुक्ति प्रकरण
गोम्मट सार
गौतम चरित्र
चारित्रसार
चर्चा सागर
चर्चा० समीक्षा
छेदपिंडम्
छेदशास्त्र
जैनसिद्धांत संग्रह
जैनधर्मकी उदारता
जैनाचार्योंके शासनभेद
जंबूचरित्र
तत्वार्थाधिगम
,, सर्वार्थसिद्धि
,, राजवार्तिक
,, श्लोकवार्तिक
,, सार
,, श्रुतसागरी
,, भाषा-टीका
तिलोयपन्नति
तिलोय सार
त्रिवर्णाचार-३
दर्शन सार
दशभक्त्यादि
दि० पट्टावली
देवशास्त्र गुरुपूजा
द्रव्यसंग्रह
धर्म परीक्षा
नंदीश्वर भक्ति
नंदीश्वर० पूजा
निर्वाण कांड
निर्वाण भक्ति
नीतिसार
नीति वाक्यामृत
प्रवचन सार

प्रवचन चरणानुयोग
-चूलिका
प्रवचन सारोद्धार
पंचास्तिकाय
परमात्म प्रकाश
पद्म चरित्र
पद्मपुराण समीक्षा
पार्श्वपुराण
पुरुषार्थ सिद्धि
प्रायश्चित चूलिका
" संग्रह
बनारसी विलास
बाईश परिषह
ब्राह्मणोकी उत्पत्ति
भद्रबाहु संहिता
भ्रम निवारण
भाव संग्रह
मनोमति खंडन
महा पुराण
महावीर और बुद्ध
मुनिवंशाभ्युदय

प्रकाशक

विरञ्चीपुर सं०
श्रवणबेलोल सं०
श्रावकाचार
रत्नकरंड "
धर्मसंग्रह "
प्रश्नोत्तर "
आशाधरीय "
मेधाविकृत "
सकलकीर्ति० "
अमृतचंद्र "
श्रुतसागरी टीकाएं
श्रुतावतार
शुद्र मुक्ति
षट् खंडागम
" धवला
" जयधवला
" महाधवल
षट् प्राभृत
दर्शन "
चारित्र "
लींग "
बोध "
मोक्ष "
भाव "
सूत्र "
समयसार (प्राभृत)
समयसार प्रस्तावना
सत्यसमीक्षा
सम्यक्त्व कौमुदी
समाधि तंत्र
भक्ति
धर्मामृत

सिद्धांतसार प्रदीप
सुअखंधो
सुदर्शन चरित्र
सूर्य प्रकाश
सोमा रानी चरित्र
स्त्री मुक्ति प्रकरण
स्त्रीमुक्ति (हिंदी)
स्वामी समन्तभद्र
स्वयंभू स्तोत्र
हरिवंश पुराण
हरिवंश घत्ताबंध
हरिवंश वचनिका
ज्ञानार्णव

## दि० अखबार

अनेकान्त
खंडेलवाल हितेच्छु
जीनविजय (कनडी)
जैन गजट
जैन जगत्
जैन दर्शन
जैन मित्र
जैनसिद्धांत भास्कर
वीर

## बौद्ध-ग्रंथ

अवदान कल्प लता
दिव्यादान
मज्झिम निकाय
महा सच्चक
महा सीहनाद
महा सुकुलदायी

<u>निर्णीत-ग्रंथ</u>

अभिधान संग्रह
अभिधान निघण्टु
अमर कोष
कैयदेव निघंटु
अमोल शब्द कोष
निघंटु रत्नाकर
भावप्रकाश निघंटु
वाग्भट
वैद्यक शब्दसिंधु
शब्द चिंतामणि
शब्द सागर
शब्द सिन्धु
शब्द स्तोम महानिधि
शालिग्राम निघंटु
पाणिनीय
भागवत
गीताजी
मत्स्य पुराण
बैबल
जीव-विज्ञान
कल्पित कथासमीक्षा
मोडर्नरीव्यु
एपिग्राफिका इन्डिका
एन् साइक्लोपीडिया ओफ रीलीजियन एन्ड एथिक्स वो० १ पृ०२५९



प्रवचन चरणानुयोग –चूलिका
प्रवचन सारोद्धार
पंचास्तिकाय
परमात्म प्रकाश
पद्म चरित्र
पद्मपुराण समीक्षा
पार्श्वपुराण
पुरुषार्थ सिद्धि
प्रायश्चित चूलिका
„ संग्रह
बनारसी विलास
बाईश परिषह
ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति
भद्रबाहु संहिता
भ्रम निवारण
भाव संग्रह
मनोमति खंडन
महा पुराण
महावीर और बुद्ध
मुनिवंशाभ्युदय
मूलाचार
मोक्षमार्ग प्रकाशक
यशस्तिलक
रत्नमाला
राजावली
लब्धि सार
लाटी संहिता
वरांग चरित्र
वर्धमान पुराण
विद्वद् जन बोधक
शिलालेख संग्रह

विरंचीपुर सं०
श्रवणबेलगोल सं०

श्रावकाचार

रत्नकरंड „
धर्मसंग्रह „
प्रश्नोत्तर „
आशाधरीय „
मेधाविकृत „
सकलकीर्ति० „
अमृतचंद्र „
श्रुतसागरी टीकाएं
श्रुतावतार
शूद्र मुक्ति
षट् खंडागम
„ धवला
„ जयधवला
„ महाधवल
षट् प्राभृत
दर्शन „
चारित्र „
लींग „
बोध „
मोक्ष „
भाव „
सूत्र „
समयसार (प्राभृत)
समयसार प्रस्तावना
सत्यसमीक्षा
सम्यक्त्व कौमुदी
समाधि तंत्र
समाधि भक्ति
सागार धर्मामृत

सिद्धांतसार प्रदीप
सुअखंधो
सुदर्शन चरित्र
सूर्य प्रकाश
सोमा रानी चरित्र
स्त्री मुक्ति प्रकरण
स्त्रीमुक्ति (हिंदी)
स्वामी समन्तभद्र
स्वयंभू स्तोत्र
हरिवंश पुराण
हरिवंश पद्यबंध
हरिवंश वचनिका
ज्ञानार्णव

## दि० अखबार

अनेकान्त
खंडेलवाल हितेच्छु
जैनविजय (कनडी)
जैन गजट
जैन जगत्
जैन दर्शन
जैन मित्र
जैनसिद्धांत भास्कर
वीर

## बौद्ध–ग्रंथ

अवदान कल्प लता
दिव्यादान
मज्झिम निकाय
महा सच्चक
महा सीहनाद
महा सुकुलदायी

**विवेचित-ग्रंथ**

अभिधान संग्रह
अभिधान निघण्टु
अमर कोष
कैयदेव निघंटु
नालंदा शब्द कोष
निघंटु रत्नाकर
मदनपाल निघंटु
वाग्भट्ट
वैद्यक शब्दसिंधु
शब्द चिंतामणि
शब्द सागर
शब्द सिंधु
शब्द स्तोम महानिधि
शालिग्राम निघंटु
पाणिनीय
भागवत
मीमांसा
मत्स्य पुराण
वैदक
जीव-विज्ञान
पालिम कथासमीक्षा
मोहनसंग्रह
एपिग्राफिका इण्डिका
एन. साइक्लोपीडिया
ब्रिटानिका
भाग ... पो०
१ पृ० २५९




## भाग १ पृष्ट १३४ के अनुसन्धानमें

# स्त्रीदीक्षा-मुक्ति के पाठ.

पमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे । +++ तिण्णिअंतो मुहुत्तब्भहिय अट्ठवस्से णूण अट्ठेदालीस ४८ पुव्वकोडिओ पमत्तुक्कस्स अंतरं होदि । (पृ० ५२)

अपमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे ।

तीहिअंतो मुहुत्तेहिं अब्भहिय अट्ठवस्सेहिं ऊणाओ अट्ठेदालीस पुव्व कोडिओ उक्कस्स अंतरं । पज्जत्त मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि पज्जत्तेसु चउवीस पुव्वकोडिओ, मणुसिणीसु अट्ठ पुव्वकोडिओत्ति वत्तव्वं (पृ० ५३)

इत्थी वेदेसु पमत्तस्स उच्चदे ।

अट्ठवस्सेहिं तीहिं अंतो मुहुत्तेहिं ऊणिया त्थीवेदट्ठिदी लद्धमुक्कस्संतरं । एवमपमत्तस्स वि उक्कस्संतरं भाणिदव्वं, विसेसा भावा (पृ० ९६)

( छक्खंडागमे जीवट्ठाणं-अंतराणुगमे अंतरपरूवणं पु० ५वाँ )

वेदाणुवादेण इत्थि वेदएसु दोसु वि अद्धासु (अपूव्व-अणिवट्टिकरणेसु) उवसमा पवेसेण तुल्ला थोवा (१० होनेसे) ॥ सूत्र-१४४ ॥ (पृ० २००)

खवा संखेज्जगुणा (२० होनेसे) ॥सूत्र-१४५॥

अप्पमत्त संजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥१४६॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥१४७॥

संजदा संजदा असंखेज्जगुणा ॥१४८॥

पमत्त अपमत्त संजदट्ठाणे सव्वथोवा खइय सम्मादिट्ठी ॥१५६॥ (पृ० ३०२)

उवसम सम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदग सम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ १५९ ॥

इसीप्रकार अपूर्व करण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोमें स्त्री-वेदिओं का अल्प वहुत्व है ॥ १५९ ॥ (पृ० ३०३)

सव्व थोवा उवसमा ॥१६०॥ (प्रवेशसे नहीं, संचयसे)(पृ० ३०४)

खवा संखेज्जगुणा ॥१६१॥

( षट् खंडागम-जीवस्थान-अल्पवहुत्वानुगम-स्त्रीवेदी अल्पवहुत्व प्ररूपणा-धवला टीका मुद्रित पुस्तक पांचवा )

॥ ॐ अर्हं ॥

# श्वेताम्बर दिगम्बर

धृत्वा सन्मतिं चारित्रं, स्याद्वादं हृदि सादरं ।
श्वेताम्बर दिगम्बर—समन्वयो निगद्यते ॥

## नाम अधिकार

जैन—यह त्रिकालाबाधित सत्य है कि-जिसमें सन्मति सद् रूप और सत् तत्व के प्रणेता भगवान् सन्मति वगैरह देव हैं सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र युक्त पूज्य श्री चारित्र विजयजी वगैरह गुरुवर हैं तथा नय निक्षेप सप्तभंगी और प्रमाणों से सापेक्ष स्याद्वाद ज्ञान आगम है, वही धर्म विश्वव्यापी होने के लायक है।

दिगम्बर—ऐसा तो सिर्फ दिगम्बर जैन धर्म ही है।

जैन—महानुभाव ? जैन धर्म तो इन लक्षण से युक्त हैं ही ! किन्तु आपने दिगम्बर का विशेषण लगाकर उसको एकान्तवाद में जकड़ लिया है एवं बेकार बना दिया है। वास्तव में भिन्न भिन्न नयों की अपेक्षा से भिन्न २ दर्शन बने हैं। वैसे एकान्त मताग्रह से दिगम्बर वगैरह संप्रदाय बने हैं। एकान्तिक संप्रदाय कतई विश्वव्यापी धर्म नहीं हो सकता है।

दिगम्बर—जैन धर्म में श्वेताम्बर और दिगम्बर ये दो प्रधान शाखायें हैं। मानता हूं कि श्वेताम्बर धर्म झूठा है दिगम्बर सच्चा है।

अतएव दिगम्बर विश्वव्यापी होने के लायक है।

जैन—कसोटी के कसे विना मनमानी रीति से किसी को सच्चा या झूठा कहदेना यह केवल ज्ञान की अराजकता है। श्वेताम्बर और दिगम्बर के वास्तविक सत्यों का एकीकरण करने से ही शुद्ध जैन धर्म का स्वरूप मालूम होता है। और ऐसी अनेकान्त दृष्टि वाला जैनधर्म ही विश्वव्यापी बनने के योग्य है।

दिगम्बर—क्या दिगम्बर मान्यतायें हैं, वे कल्पना मात्र ही है? आप स प्रमाण खुलासा करें।

जैन—महानुभाव? क्रमशः प्रश्न करो! पूज्य गुरुदेव की कृपा से मैं उत्तर देता हूं आपको स्वयं निर्णय हो जायगा कि जो जो मान्यताएं प्रचलित हैं वे एकान्तिक है? जिनवाणी से विरुद्ध है? तर्क शून्य है? पराश्रित है? अपने २ शास्त्र से भी विरुद्ध है? कि ठीक है?

दिगम्बर—यदि ऐसा है तो श्वेताम्बर दिगम्बर को एक बनाने की जो कोशिश होरही है उसमें बड़ी सफलता मिलेगी। अस्तु। पहले तो यह तय हो जाना चाहिये कि श्वेताम्बर और दिगम्बर ये वास्तव में एक है कि भिन्न है?

जैन—दोनों सम्प्रदायों की जड तो एक ही है। परन्तु दोनों में शुरू से ही सालेप भेद हैं। जो इस प्रकार है।

भगवान महावीर के श्रमणसंघ में और दो मुनि संघ आकर सम्मिलित हुए थे।

१. भगवान पार्श्वनाथ का मुनि संघ, जो चातुर्याम याने चार महाव्रत वाला था। विविध रंग वाले वस्त्रों का धारक था। इस संघ के आचार्य केशीकुमार थे जिन्होंने गणधर इन्द्रभूति गौतमस्वामीसे परामर्श करके भगवान महावीर स्वामी के संघ में प्रवेश

किया। श्री उत्तराध्यान सूत्र में इस मुनि संघ का विचारभेद पाया जाता है। और बौद्ध त्रिपटकों में भी इस संघ का 'चाउज्जामो धम्मो' इत्यादि शब्दों से उल्लेख मिलता है। इस संघ की मुनि परम्परा आज भी उपकेश गच्छ कवलागच्छ इत्यादि नामों में प्रख्यात है।

२. मंखलीपुत्र गोशाल का मुनि संघ, यह भगवान महावीर के छद्मस्थ अवस्था के एक शिष्य का संघ है जो प्रधानतया नग्न ही रहा करता था, इसका आचार्य लोहार्य या अन्य कोई था जिन्होंने अपने गुरु की अन्तिम आज्ञा को शिरोधार्य बनाकर अपने गुरुके भी गुरु भगवान महावीर स्वामी के संघ में प्रवेश किया।

श्री सूत्र कृतांग और भगवती सूत्र में इस मुनि संघ का विस्तृत वर्णन मिलता है।

दिव्यादान (१२ । १४२, १४३) अवदान कल्पलता (पल्लव १७ । ४११) मज्झिम निकाय के चूलसागरोपम सुत्तंत १ । ३ । १० सन्दक २ । ३ । ६ (पृष्ट ३०१, ३०४) महासुकुलदायी सुत्तंत २ । ३ । ७ । महासच्चक १ । ४ । ६ (पृष्ट १४४) महासीहनाद १२ । २ । २ (पत्र ४८) वगैरह बौद्ध शास्त्रों में भी इस मत के विभिन्न उल्लेख हैं।

एनसाईक्लोपीडिया ओफ रीलिजियन एन्ड एथिक्स वॉल्यूम १ पृ० २५९ में बड़े लेख द्वारा इस मुनि संघ पर अच्छा प्रकाश डाला गया है उसके लेखक ए० एफ० आर होअर्नल साहब बड़ी छान बीन के बाद बताते हैं कि उसके मत में १ शीतोदक, २ बीजकाय ३ आधाकर्म और ४ स्त्री सेवन की मना नहीं है (सूत्र कृतांग) ये अचेलक हैं मुक्त चार हैं हस्तापलेपन (कर पात्र) हैं। एकागारीक (एक घर से आधाकर्मी भिक्षा लेने वाले) हैं (मज्झिमनिकाय पृ० १४४ व ४८) यह मत पुरुषार्थ, पराक्रम का निषेध करता है और नीयति को ही प्रधान मानता है।

( मज्झिमनिकाय पृ० ३०१ । ३०४ उपासक दशांग ) वगैरह वगैरह ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस मुनि संघ ने उपरोक्त बातों में सुधार कर और भ० महावीर स्वामीकी आज्ञाको अपना कर उनके संघ में प्रवेश कीया था परन्तु यह संघ अनेकांत दृष्टि से अचेलक रहने में भी स्वतंत्र था ।

इस संघ की मुनि परम्परा आज भी आजीवक, त्रैराशिक और दिगम्बर इत्यादि नाम से विख्यात है ।

( हलायुधकृत अभिधान रत्नमाला, विरंचीपुर का शिलालेख, तामिल शब्द कोष, सूत्रकृतांगटीका )

इस प्रकार ये दोनों संघ श्रमण संघ में सम्मिलित हो गये । उस समय वह श्रमण संघ अविभक्त था । उसमें न वस्त्र का एकांत आग्रह था ? न नग्नता का ! न पुरुष जाति से पक्षपात था ! न स्त्री जाति से ! इसी प्रकार ६०० वर्ष तक अविभक्तता जारी रही । बाद में किसी एक मुहूर्तकाल में दिगम्बरत्व को प्रधानता देकर, आजीवक संघ का कोई दल अलग होगया, और उसने आजीवक मत की शीतोदक ग्रहण वगैरह जो मान्यताएँ थीं उनमें से कई को पुनः स्वीकार कर लिया । उस समय उसके नायक थे आ० शिव भूति याने भूतबली और आ० कुंद कुंद वगैरह

दिगम्बर—उपलब्ध दिगम्बर शास्त्रों में भी शीतोदक ग्रहण आदि के प्रमाण मिलते हैं ?

जैन—हाँ ! आपकी जानकारी के लिये थोड़े से प्रमाण देता हूँ

१ पाषाण स्फोटितं तोयं, घटी यंत्रेण ताडितं ।

सद्यः संतप्त वापीनां, प्रासुकं जल मुच्यते ॥

※ देवर्षिणां प्रशौचाय, स्नानाय गृहमेधिनां ।

( आ० शिव कोटि कृत रत्नमाला श्लोक ६३, ६४ )

( जैन दर्शन व० ४ अं १ पृ० १११-११२ अं ४ पृ १५५-५८ )

२ मुहूर्त गालितं तोयं, प्रासुकं प्रहर द्वयम् ।
उष्णोदक महोरात्र—मतः संम्मूर्छितं भवेत् ॥

( रत्न माला, जैन दर्शन वर्ष ४ अं० ३ पृ ११६ )

३ वृत्तपर्णोपरि पतित्वा यज्जलं यत्युपरि पतति तस्य प्रासुक त्वा द्विराधनाप्कायिकानां जीवानां न भवति

( आ० कुन्द कुन्द कृत भाव प्राभृत गा० १११ की टीका पृ० २६१ )

४ विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादि गालित जलं ।

पानी के विलोडित इत्यादि चार भेद हैं। विलोडित छना हुआ पानी अचित्त है। पाषाण स्फोटित इत्यादि पानी भी विलोडित मान जाते हैं।

( दि० आ० श्रुत सागर कृत तत्वार्थ सूत्र टीका )

५ अत्यक्तात्मीय मसद्वर्ण-संस्पर्शादिक मंजसा।
अप्रासुकमथा तप्तं, नीरं त्याज्यं व्रतान्वितैः ॥

( प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, संधी २२, श्लो० ६१ )

६ नभस्वता हतं ग्राव—घटी यन्त्रादि ताडितम्
तप्तं सूर्यांशुभिर्व्याप्यां मुनयः प्रासुकं विदुः ॥ ५३ ॥
स्नानादि ॥ ५४ ॥

( पं० मेधावि पं० कुल तिलक कृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार )

---

※ दिगम्बर मत में आकाश चारण सिद्धि प्राप्त मुनि देवर्षि माने जाते हैं।
( चारित्र सार पृ० २२, प्रवचनसार पृ० ३४३ जैन दर्शन व० ४ पृ० ३३१ )
अथवा एक विहारी या मासोपवासादिक धारक महामुनि देवर्षि हैं।
( जैन दर्शन, व० ४ पृ १५९ )

१ मल १४ हैं जिनमें कन्द, मूल, बीज, फल, कण और कुण्ड (भीतर से अपक्व चावल) ये भी सब मल हैं किन्तु ये अप्रासुक नहीं हैं याने इनके सद्भाव में सचित्त निक्षिप्त, सचित्त पिहित या सचित मिश्र का दोष नहीं है।

(पं० आशाधर कृत अनगार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ३९)

२ कन्दादिषट्कंत्यागार्हं, इत्यन्नाद्विभजेन्मुनिः
न शक्यते विभक्तुं चेत्, त्यज्यतां तर्हि भोजनम्।

टीका-कन्दादिषट्कं मुनि पृथक् कुर्यात माने ये सचित्त नहीं है अतः इनको दूर करके दिगम्बर मुनि आहार करें।

(पं० आशाधर कृत अनगार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ४१)

३ मूलाचार पिण्ड विशुद्धि अधिकार गा० ६५ की टीका में भी उपरोक्त विधान आया है

विशेष जानकारी करनी हो तो ता० १६। ८। १९३६ ईस्वी० के खंडेलवाल हितेच्छु अंक २१ में प्रकाशित ब्यावर निवासी दि० ब्र० महेन्द्रसिंह न्यायतीर्थ का "वनस्पति आदि पर जैन सिद्धान्त" शीर्षक लेख पढना चाहिये।

उपर के ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है कि-दिगम्बर श्वेता० इन दोनों का उद्-गम एक ही स्थान से है परन्तु दोनों में शुरु से ही सापेक्ष भेद है जो भेद आज अनेक शाखा प्रशाखाओं से अति विस्तृत हो उठा है।

दिगम्बर—यह भेद आचार्य भद्रबाहु स्वामी के बाद हुआ है दिगम्बर विद्वानों ने इस भेदका समय वि० सं० १३६ लीखा है।

(आ० देवसेन कृत दर्शनसार, और भाव संग्रह गा० १३७, पं० नेमिचन्द्रजी कृत सूर्यप्रकाश श्लो० १४७, पृ० १७९, भट्टारक इन्द्रनन्दि कृत नीतिसार श्लो० ९ पं० गजाधरलालजी सम्पादित "समयसार प्राभृत" प्रस्तावना)

जैन—ठीक है, दिगम्बर के दूसरे भद्रबाहु स्वामी याने श्वेताम्बर मतानुसार वज्रस्वामी के बाद यह भेद पडा है। जिसका समय वि० सं० १३९ है। विचार भेद होना, जोड़ने का प्रयत्न करना और आखिर में अलग २ हो जाना, इसमें तीन वर्ष व्यतीत हो जाय यह स्वाभाविक है। इस विषय के लिये दोनों में खास मत भेद नहीं है।

दिगम्बर—इस मत भेद की जड़ क्या है?

जैन—मत भेद की उत्पति के लिये तो प्रसंग आने पर बताया जायगा। समुचित यह मानना होगा कि वस्त्र के निमित्त यह मत भेद खड़ा हुआ है यानी जैन मुनि वस्त्र पहिने कि न पहिने?

इस वस्त्र के ही झगड़े में "जैनधर्म" यह नाम लुप्त हो गया और वस्त्र के कारण ही दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो नाम प्रसिद्ध हुए। अम्बर के निषेध में इतना आग्रह था कि उसके लिये जैन नाम को हटा कर दिगम्बर नाम ही अपना लिया और उसको अच्छा माना।

वस्त्र के निषेधकार को अपनी मान्यता की पुष्टि के लिये स्त्री मोक्ष, केवली भुक्ति, द्रव्य शरीर वचन और मन के प्रयोग, औदारिक शरीर, परिषह, साक्षरी वाणी इत्यादि अनेक बातों का निषेध करना पड़ा। मगर प्रधान दिगम्बर आचार्य इन सब निषेधों को स प्रमाण मानते नहीं हैं। जो कि आपके प्रश्नों के उत्तर में क्रमशः बताया जायगा।



# मुनि उपधि-अधिकार

दिगम्बर—पांच महाव्रत वाले साधु परिग्रह के त्यागी होते हैं। अतः उन्हें परिग्रह नहीं रखना चाहिये वस्त्र पात्र वगैरह का त्याग करना चाहिये।

जैन—आप परिग्रह का लक्षण क्या मानते हैं ?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्र में परिग्रह का स्वरूप इस प्रकार है !

१ मूर्छा परिग्रहः

( आ० श्री उमास्वाति कृत तत्वार्थ सूत्र अध्याय ७ सूत्र १७ )

२. ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्मम त्ति मुवदिट्ठो।

( आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गाथा ५० )

मूच्छादि जणण रहिदं, गेराहदु समणोयदिवि अप्पं

( आ० कुन्द कुन्द प्रवचन सार, चरणानु योग चूलिकागाथा २२ )

४. पाखंडियालिंगेसु व, गिहालिंगेसु य वहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्ति, तेहिं ण णादं समयसारं ॥४४३॥

टीकांश—निर्गन्थ रूप पाखंडि द्रव्य लिंगेषु कौपीन चिन्हादि गृहस्थलींगेषु वहु प्रकारेषु ये ममतां कुर्वन्ति।

याने जो किसी भी लिंग ऊपर ममत्व रखता है वह परमार्थ को जानता नहीं हैं।

( आ० कुन्द कुन्द कृत समय प्राभृत गा० ४४३ )

५ या मूर्छानामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।
मोहोदयादुदीर्णो, मूर्छा तु ममत्व परिणामः॥ १११।

मूर्छा लक्षण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो[4] मूर्छावान्[3] विनापि[2] शेपसंगेभ्यः[1] ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥

( आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ६६२ )

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है अममत्व के कारण ही समोसरन आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥

( भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३१ । ३० )

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन।
साल-त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥

( कल्याण मन्दिर स्तोत्र )

३. अनीहितु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥

( आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्र )

४ जलद जलद ननु मुकुट सपतफण

( पं० बनारसीदास कृत )

( पं० चम्पालाल कृत चर्चा सागर चर्चा २२८ पृ० ४३५ )

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इन

विभूतिओं के होने पर भी अममत्व के कारण वे अपरिग्रही हैं परिग्रह से मुक्त हैं।

सारांश यह यह है कि दिगम्बराचार्य मूर्च्छा को ही परिग्रह मानते हैं।

जैन—तब तो जैन साधु वस्त्रादि उपधि को रखते हैं उसमें भी अममत्व होने से परिग्रह दोष नहीं है।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान तो नग्न ही होते हैं मगर अतिशय से अनग्न से दीख पड़ते हैं।

जैन—तीर्थंकर भगवान के ३४ अतिशयों में ऐसा कोई भी अतिशय नहीं है जो नग्नता को छिपावे, वास्तव में तीर्थंकर भगवान सवस्त्र ही होते हैं बाद में किसी का वस्त्र गिर जाय तो अनग्न भी होते है। इस प्रकार तीर्थंकरो में नग्नता या अनग्नता का कोई एकान्त नियम नहीं है।

बौद्ध धर्म के त्रिपीटक शास्त्रों में भ० पार्श्वनाथ के अनुयायीयों को चातुर्याम धर्मवाले और सवस्त्र माने है यानी भगवान पार्श्वनाथ और उनकी सन्तान सवस्त्र थी नग्न नहीं थी। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त दो हजार वर्ष की पुराणी जिनेन्द्र प्रतिमाएँ अनग्न हैं, दिगम्बर चिन्ह से रहित है। जिनके ऊपर श्वेताम्बर आचार्य के नाम खुदे हुए हैं। वहाँ करीब ६०० वर्ष पुरानी दिगम्बरीय प्रतिमाऐं भी हे जो खुल्लम खुल्ला दिगम्बर ही है इससे भी स्पष्ट है कि दो हजार वर्ष पहिले "तीर्थंकर भगवान नग्न ही होते हैं" ऐसी मान्यता नहीं थी।

मकाशफते बाब ४ आयात ४ में तख्त नशीन सफेद वस्त्रवाले और सोने के ताज वाले २४ बुजुर्ग का वर्णन है संभवतः वह २४ तीर्थंकरों का वर्णन है।

विद्वानों का मत है कि—इसा मसीह ने कई वर्ष पर्यन्त हिन्द में रह कर जैन बौद्ध या शैव धर्म का परिशीलन किया और बाद में यूरोप में जाकर इसाई धर्म की स्थापना की। यहां के २४ अवतारों को उन्होंने उक्त शब्दों द्वारा ईश्वरी स्थान दिया है। मगर बौद्ध धर्म में इस प्रचार २४ बौद्ध नहीं हैं और शैव धर्म में २४ अवतार मनुष्य रूप से नहीं है। सिर्फ जैन धर्म में ही २४ तीर्थंकर है और वे मनुष्य ही है, अतः उस आयात में २४ बुजुर्ग के रूप में इनका ही सूचन है। इसके अलावा इसाई धर्म में पापों की क्षमा मांगने की विधि भी जैन प्रतिक्रमण का ही कुछ अनुकरण है। इससे तय पाया जाता है कि—इसा मसीह ने यहां जैन धर्म का परिशीलन किया हैं। यदि यह बात सच्ची है तो उस समय में २४ तीर्थंकर पोपार्क में माने जाते थे। यह भी स्वीकृत करना पडेगा।

दिगम्बर—भगवान महावीर स्वामी के युग के जैन मुनि नग्न ही थे।

जैन—यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से गलत है।

१—बौद्ध शास्त्रों में सूचित "चाउज्जामो धम्मो" वाले जैन साधु सवस्त्र ही थे।

२—बौद्ध आगमों में आजीवक मत की चर्चा है कि आजीवक मत में समस्त जीवों के वर्गीकरण से छे अभिजातियाँ ( छे लश्या के समान विकास पायरी ) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं।

१—कृष्णाभिजाति—क्रूर मनुष्य

२—नीलाभिजाति—भिक्षु, बौद्ध भिक्षु

३—लोहित्याभि जाति-निर्ग्रंथ साधु जो नियत तथा चोल पट्टा को पहिनते हैं माने जो वस्त्रधारी ही हैं।

४—हरिद्राभिजाति—सर्व वस्त्र त्यागी-आजीवक गृहस्थ(एलक वगैरह गृहस्थ)

५—शुक्लाभिजाति—आजीवक श्रमण, श्रमणी

६—परम शुक्लाभिजाति—आजीवक धर्माचार्य नंदवत्स किस संकिश और मक्खली गोशाला वगैरह।

इन अभिजातियों का परमार्थ यह है कि अधिक वस्त्र वाले मनुष्य प्रथम पायरी पर खड़ा है अल्प वस्त्र वाला बीच में खड़ा है और बिलकुल नग्न छठी पायरी पर जा पहुँचा है।

इस हिसाब से बौद्ध श्रमण दूसरी कक्षा में जैन निर्ग्रन्थ तीसरी और आजीवक श्रमण पाँचवीं कक्षा में उपस्थित हैं। साफ बात है कि उस काल में निर्ग्रन्थ श्रमण वस्त्रधारी थे और आजीवक श्रमण नंगे रहते थे।

( एन साई क्लो पीडिया ऑफ रीलिजियन एण्ड एथिक्स वॉ॰ १ पृ० २५९ का आजीवक लेख )

३—लोहित्या भिजाति नाम"निग्गं था-एक साटिक"ति वदन्ति। लोहिता भि जाति माने वस्त्रवाले जैन निर्गन्थ।

दि० बाबू कामता प्रसादजी कृत "महावीर और बौद्ध )

यह पाठ भी ऊपर के पाठ का ही उद्धृत अंश है। इसमें जैन साधुओं को सवस्त्र माना है।

४—पाणीनीय व्याकरण में "कुमारश्रमणादिभिः" सूत्र से गणधर श्री केशिकुमार का उल्लेख है ये आचार्यभी वस्त्र धारी थे इन्होंने गणधर श्री गौतम स्वामी से आचार पर्यालोचना की थी।

( उतराध्ययन सूत्र अ० )

५—कलिंगाधिपति सम्राट् खारवेल ने जैन मुनिओं को वस्त्र दान किया था ऐसा उसके उत्कीर्ण शिला लेख में लिखा गया है।

६--द्वादशांगी जिनवाणी का आदिम अंग "श्री आयरंग सुत्तं" में जैन निर्ग्रन्थों को पाँच जाति के वस्त्रों की आज्ञा है विक्रमी दूसरी शताब्दी पर्यन्त के किसी भी ग्रन्थ में इसका विरोध नहीं किया गया। पहले पहल आचार्य कुन्द कुन्द ने "षट् प्राभृत" ग्रन्थ में इसका विरोध किया। इसी से स्पष्ट है कि उस समय पर्यन्त जैन श्रमण वस्त्र धारी थे और पाँच जाति के वस्त्र पहिनते थे किसी को नग्नता का आग्रह नहीं था। यकायक आ० कुन्द कुन्द ने पाँच जाति के वस्त्र का निषेध लिखा और बाद के श्वेताम्बर आचार्यों ने भी एकान्त नग्नता तथा इस कृत्रिम नग्नता का विरोध किया। भूलना नहीं चाहिये कि वीर निर्वाण के ६०० वर्ष तक के किसी जैन आगम में दिगम्बर का विरोध नहीं है किन्तु बाद में ही श्वेताम्बर शास्त्रों में दिगम्बर विरोध लिखा गया है। जब दिगम्बर के प्राचीन या अर्वाचीन सब शास्त्रों में श्वेताम्बर का विरोध जोर शोर से किया गया है। इसीसे कौन साहित्य प्राचीन है और कौन अर्वाचीन है, यह निर्विवाद हो जाता है, और जिसका विरोध किया जाता है उसकी प्राचीनता भी स्वयं सिद्ध हो जाती है।

सारांश यह है कि-विक्रम की दूसरी शताब्दी तक जैन शास्त्रों में वस्त्र का निषेध नहीं था। जैन मुनि वस्त्रधारी थे वस्त्र के एकांत विरोधी नहीं थे।

दिगम्बर--जैन मुनि का असली नाम निर्ग्रन्थ है निर्ग्रन्थ का अर्थ यही होता है कि दिगम्बर।

जैन--दिगम्बर सम्मत शास्त्र पांच प्रकार के निर्ग्रन्थ मानते हैं और ये सब वस्त्रधारी थे ऐसा साफ २ बताते हैं। देखिये-

१—पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थ लिंग लेश्योपपातस्थान विकल्पतः साध्याः ।

( वा० उमास्वति कृत तत्वा० अ० १ सू ४६ ४७ )

अविविक्त परिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तर गुण विराधिनः प्रति सेवना कुशीलाः ।

निर्गन्थ वस्त्र पात्र और उपकरण वाले तो होते ही हैं परन्तु उसमें ममता नहीं रखते हैं यदि उनमें "अव्यक्त परिग्रह "यानी मूर्छा करते हैं। तो भी वे तीसरी कोटि के निर्गन्थ ही हैं।

प्रति सेवना कुशीलाः द्वयोः संयमयोः दश पूर्व धराः ।

वे निर्गन्थ दो चारित्र वाले और दश पूर्व के ज्ञान वाले भी होते हैं।

तत्र उपकरणाभिष्वक्त चित्तो, विविधविचित्र परिग्रह युक्तः, वहु विशेषयुक्तोपकरणकांची, तत्संस्कार प्रतिकार सेवी, भिक्षुः ॥

निर्गन्थ के पास वस्त्र पात्रादि उपकरण होते ही हैं । परन्तु वह उनमें आसक्त चित्त रहे, विविध और विचित्र वस्त्रादि को धारण करें या तीर्थंकर की आज्ञा से अतिरिक्त विशेष उपकरणों की चाहना करे तो वह पाँच में से दूसरी कक्षा का निर्गन्थ है।

लिंग द्विविधं, द्रव्यलिंगं भावलिंगंच । भावलिंगं प्रतीत्य सर्वेपि निर्गन्थाः लिंगिनो भवन्ति । द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः ।

श्रमण लिंग दो प्रकार के हैं । १-द्रव्यलिंग-साधु वेष और २—भावलिंग--चारित्र। चारित्र के जरिये पाँचो निर्गन्थ "लिंगी" हैं। द्रव्यलिंग के जरिये उनके अनेक भेद होते हैं।

दिगम्बर के—विद्वज्जन बोधक पृष्ठ १७८ में भी लिखा है—कि द्रव्यलिंग ने प्रतीतिकरि तिसे विचारिये तो पांचों ही भेद भाज्य है भेद करने योग्य हैं।

इस पाठ से स्पष्ट है कि पाँचों निर्ग्रन्थ के भिन्न २ साधु वेश होने के कारण अनेक भेद होते हैं। यदि निर्ग्रन्थ का द्रव्यलिंग सिर्फ नग्नता ही होती तो भावलिंग के समान द्रव्यलिंग का भी एक ही भेद होता, किंतु यहाँ अनेक भेद माने हैं, अतः स्पष्ट है कि-निर्ग्रन्थों का द्रव्यलिंग नग्नता नहीं किन्तु साधुवेश यानी साधु के उपकरण ही है, और ये उपकरण अनेक प्रकार के हैं।

( तत्वार्थ सूत्र अ० १ सू० ४६, ४७ की सर्वार्थ सिद्धि और राजवार्तिक टीका पृ० ३५८, ३५६ )

संनिरस्त कर्माणोंतमुहूर्त केवल ज्ञान दर्शन प्रापिणो निर्ग्रन्थाः।

चौथा "निर्ग्रन्थ" नामक निर्ग्रन्थ वही है जो कि बाह्य और अभ्यंतर ग्रन्थी से रहित है, और जिसको अन्त मुहूर्त में केवल ज्ञान व केवल दर्शन होता है। इससे भी स्पष्ट है कि नंगे को निर्ग्रन्थ मानना, सरासर भ्रम ही है।

प्रकृष्टा प्रकृष्ट मध्यमानां निर्ग्रन्थाभावः।''''न वा'''''' संग्रह व्यवहारा पेक्षत्वात्॥

तरतमता के होने पर भी पाँचों निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ ही हैं। नयों की अपेक्षा से यह भेद भी उचित हैं।

( तत्वार्थ सूत्र टीका )

तयो रुपकरणा सक्ति संभवात् आर्त ध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्तध्यानेन कृष्णलेश्यादि त्रयं भवति।

बकुश और प्रति सेवना कुशीलकी छे लेश्या होती है निर्गन्थ वस्त्रादि उपकरण वाले हैं अतः उन्हें कभी उपकरणों में आसक्ति होना भी सम्भवित है। जब निर्गन्थ को आसक्ति होती है तब आर्तध्यान होता है कृष्णादि तीन लेश्यायें होती है

( चारित्र सार, व विद्वज्जन पृ० १७९ )

शारांश—जैन मुनि का असली नाम "निर्गन्थ" है। जो उक्त दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार वस्त्रादि युक्त, किन्तु उनमें मूर्छा रहित ही होता है, अतः वह निर्गन्थ माना जाता है।

श्वेताम्बर जैन मुनियों का सर्व प्रथम संघ "निर्गन्थ गच्छ" है और दिगम्बर का सर्व प्रथम संघ "मूल संघ" है। इससे भी स्पष्ट है कि निर्गन्थ यह संकेत शुरु से आज तक वस्त्र धारी श्रमणों के लिये उपयुक्त है।

भूलना नहीं चाहिये कि जिनागम जैन तीर्थ और निर्गन्थ गच्छ की संपत्ति ( वारसा ) श्वेताम्बर संघ को ही प्राप्त हुई है। दिगम्बर संघ इन लाभों से वंचित रहा है।

दिगम्बर—श्री उमास्वाती महाराज भी नग्नता माने अचेल परिषह मानते हैं इससे ही दिगम्बरत्व साध्य है।

जैन—यह परिषह तो वस्त्र के ही पक्ष में है क्षुधा और पिपासा के सद्भाव में आहार और पानी की आवश्यकता होने पर भी अप्रासुकता आदि के कारण आहार पानी न मिले या अल्प प्रमाण में मीले, तो भी काम चला लेवे दुःख न माने और संतुष्ट रहे इस परिस्थीति में वहाँ क्षुत, पिपासा परिषह माने जाते हैं, जो संवर रूप है। और आहार पानी को छोडकर बैठ जाना, वह तपस्या मानी जाती है, जो निर्जरा का कारण रूप है। वैसे ही वस्त्र की आवश्यकता होने पर भी निर्दोष न मिलने के कारण

अल्प वस्त्र से चलाना पडे या विना वस्त्र रहना पडे उस हालत में अचेल परिषह माना जाता है जो संवररूप है और वस्त्र को छोड कर बैठ जाना वह "काया क्लेश" रूप तपस्या है। भूलना नहीं चाहिये कि मुनि धर्म में संवर अनिवार्य है और तपस्या यथेच्छ है।

इस हिसाब से स्पष्ट है कि मुनियों को आहार पानी अनिवार्य है वैसे ही वस्त्र धारण करना भी अनिवार्य है। यदि ये शुद्ध मिलें तो साधु इनको लेते हैं। मगर वैसे न मिले तो क्षुत, पिपासा और अचेल परिषह को सहते हैं।

इस प्रकार क्षुत् परिषह से मुनियों के आहार का समर्थन होता है। और अचेल परिषह से मुनियों के वस्त्र का ही समर्थन होता है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर आगम में जिनकल्पी का वर्णन है वह असली मुनि लिंग है।

जैन—जैन दर्शन स्याद्वादी है, अतः एक मार्ग का आग्रह नहीं रखता है। मैं बौद्ध प्रमाणों से बतला चुका हूं कि भगवान महावीर स्वामी के साधु वस्त्र धारक थे। उनमें से कोई मुनिजी विशेष तपस्या करना चाहते याने अधिक कायक्लेश सहने को उद्युक्त होता तो वे ज्ञानी को पूछकर जिनकल्पी भी बनते थे। जो वस्त्र युक्त रहते थे या वस्त्र रहित भी बन जाते थे। भूलना नहीं चाहिये कि जिनकल्पी बनने वाले को कम से कम ११ अंग और १२ वे अंग के दशवें पूर्व की तीसरी वस्तु तक का ज्ञान और प्रथम संहनन होना चाहिये। इसके विना जिनकल्पी बनना, जिनकल्पी बनने का मजाक उडाने के सिवाय और कुछ नहीं है। जिनकल्पी को क्षपक श्रेणी नहीं होती है। १० पूर्व से अधिक ज्ञान वाले को जिनकल्पी रूप कायक्लेश तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है।

( बृहतकल्पभाष्य गा० १३८५ से १४१४, पंचवस्तु गा० १५७८ )

सारांश--जिनकल्पी व नग्नता असली मुनिलिंग नहीं है किन्तु विशिष्ट प्रवृत्ति ही है। असली मुनि मार्ग यानी सर्व सामान्य मुनि जीवन स्थविर कल्प ही है।

दिगम्बर--स्थविर कल्प और जिनकल्पी के लिये पूर्व ज्ञान की अनिवार्यता है, इत्यादि ये सब श्वेताम्बर की कल्पना ही है।

जैन--दिगम्बर शास्त्र में भी जिनकल्पी और स्थविरकल्पी की व्यवस्था बताई है इतना ही नहीं किन्तु जिनकल्पी के लिये विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट सहनन की अनिवार्यता भी स्वीकारी है। देखिये प्रमाण

१-मुनियों के जिन कल्पी और स्थवीर कल्पी ये दो भेद हैं।

(आ० जीनसेन कृत आदि पुराण सर्ग—११, श्लोक ७२)

मूलुत्तर गुण धारी, पमादसहिदो पमाद रहिदो य।
ऐकक्को वि थिरा-थिर भेदेण होइ दुवियप्पो ॥ २१ ॥
थिर अथिरा ज्जाणं पमाद दप्पेहिं एगबहुवारं ॥
समाचारदिचारे, पायच्छित्तं इमं भणियं ॥ २६१ ॥

याने जैन साधु के प्रमत्त और अप्रमत्त तथा स्थविर कल्पी और अस्थविर कल्पी ये दो २ विकल्प है आर्या के भी ये ही दो दो भेद है।

(दि० आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपिंडम्)

२-दुविहो जिणेहिं कहियो जिणकप्पो तहय थविरकप्पो य ॥
सो जिण कप्पो उत्तो उत्तम संहणण धारिस्स ॥ ११६ ॥
एगारसंगधारी ॥ १२२ ॥

याने-जिन कल्प और स्थविर कल्प ये दो कल्प है जिन कल्प उत्तम संहन वाले और ग्यारह अंग वेदी के योग्य है।

(आ० देव सेन कृत भाव संग्रह)

इस प्रकार दिगम्बर शास्त्रों में भी दो कल्प बताये हैं, और जिन कल्प यह किसी ज्ञानी की खास विशिष्ट यथेच्छ प्रवृति है ऐसा स्पष्ट कर दिया है।

ये प्रमाण भी बताते है कि-स्थविर कल्प ही प्रधान श्रमणमार्ग है जब जिन कल्प सिर्फ व्यक्तिगत विशिष्ट प्रवृत्ति है। इस हालत में जिन कल्प असली याने प्रधान मुनि लिंग नहीं हो सकता है।

दिगम्बर—आ० कुन्द कुन्द तो सब द्रव्य के त्याग से ही अपरिग्रहता मानते हैं। वे लिखते हैं कि-

वालग्ग कोडिमित्तं, परिग्गह ग्गहणं ण होई साहूणं।
भूंजेइ पाणि पत्ते, दिण्णंण्णं इक्क ठाणम्मि ॥ १७ ॥

( आ० कुन्द कुन्द कृत-सूत्र प्राभृत )

किध तम्हि नात्थि मूच्छा। आरम्भो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो, कध मप्पाणं पसाधयदि ॥ २० ॥

टीका--उपाधि सद्भावे हि ममत्व परिणाम लक्षणायाः मूर्च्छायाः, तद्विषय कर्म्म प्रक्रम परिणाम लक्षणस्यारंभस्य, शुद्धात्म रूप रूप हिंसन परिणाम लक्षणस्याऽसंयमस्य चावश्यं भावित्वात्।

याने-उपधि में मूर्च्छा, आरम्भ और असंयम होता है, पर द्रव्य में रत मनुष्य आत्मा को साध सकता नहीं है।

( आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचन सार चरणानुयोग चूलिका )

जैन--महानुभाव! यह कथन सिर्फ ममता रूप परिग्रह यानी मूर्छा के खिलाफ है वास्तव में बालाग्र ही नहीं किन्तु बालों का समूह-पींछी, उपधि, शरीर वाणी और मन वगैरह पर द्रव्य है। जो धर्म साधन के हेतु होने के कारण उपकरण ही है किन्तु मूर्छा होने

पर वे सब अधिकरण बन जाते हैं, इस आशय को स्पष्ट करने के लिये ऊपर की गाथायें पर्याप्त हैं।

यदि ऐसा न होता तो वे आचार्य उपाधि की आज्ञा कतई नहीं देते। किन्तु प्रत्यक्ष है कि वे ही बाद की गाथाओं में उपाधि स्वीकार की आज्ञा देते है। देखिये—

छेदो जेण न विज्जदि, गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स
समणो तेणिह वट्टदु, कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २१ ॥

टीका—यः किल अशुद्धोपयोगाऽविनाभावी स छेदः। अयं उपधिस्तु श्रामण्यपर्याय सहकारकारि कारण शरीर धृति हेतुभूताऽऽहार निहारादि ग्रहण विसर्जन विषय छेद प्रतिषेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाऽविना भूतत्वात् प्रतिषेध एव स्यात् ॥ २१ ॥

अथाऽप्रतिषेद्धोपाधिस्वरूप मुपदिशति।

अप्पडिकुट्ठं उपधिं अपत्थणिज्जं असंजद जणेहिं।
मूर्च्छादिजणण रहिदं, गेह्णादु समणो यदि वि अप्पं॥२२॥

टीका—यः किलोपधिः बंधाऽसाधकत्वाद प्रति कुष्ठः संयमादन्यत्रानुचितत्वाद संयतजनाऽप्रार्थनीयो, रागादि परिणाम मंतरेण धार्य माणत्वा"न्मूर्च्छादिजनन रहित श्च"भवति स खलु "अप्रतिषिध्धः"। अतो यथोदितस्वरूप एवोपाधिरुपादेयो, न पुनरल्पोपि यथोदित विपर्यस्त स्वरूपः ॥ २२ ॥

बालो वा वुड्ढो वा, समभिहतो वा पुणो गिलाणो वा।
चरिय चरउ सजोग्गं, मूलच्छेदं जधा ण हवदि ॥ २९ ॥
आहारे व विहारे देशं कालं समं खमां उवधिं।
जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्प लेवी सो ॥ ३० ॥

टीकांश—१ अल्प लेपो भवत्येव तद्वर मुत्सर्गः ॥

२—अल्प एव लेपो भवति, तद्वरमपवादः ॥

३-देशकालज्ञस्यापि बाल वृद्ध श्रान्त ग्लान त्वानुरोधेना ऽऽहार विहारयो रल्पलेपभयेनाऽप्रवर्तं मानस्याऽतिकर्कशाऽऽचरणीभूय क्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांत समस्त संयमाऽमृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्य प्रतिकारो महान् लेपो भवति, तन्न श्रेया नपवादनिरपेक्षः उत्सर्गः।

४-असंयत जन समानी भूतस्य ...... महान् लेपो भवति, तन्नश्रेयानुत्सर्ग निरपेक्षोऽपवादःसर्वथानु गम्यस्य परस्पर सापेक्षोत्सर्गापवाद विजृंभित वृत्तिः स्याद्वादः ॥ ३०॥

याने साधु काल क्षेत्र के विचार से प्रवृति करें जिसके लेने छोडने और वापरने में छेद न हो ऐसी उपाधि को स्वीकारे। "ममत्व न हो तब उपाधि अप्रतिषिद्ध माना गया है", उपाधि निषेध का कारण "ममता" ही है। बाल वृद्ध श्रमित और ग्लान मुनि मूलच्छेद न हो इस बात को लक्ष्य में लेकर स्वयोग्य प्रवृति करें। मुनि देशकाल श्रम क्षमा और उपाधि को जानकर आहार तथा विहार में प्रवृत्ति करें।

इस प्रवृति में अल्पलेपी के लिये चतुर्भंगी होती है जिसमें अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग और उत्सर्ग निरपेक्ष अपवाद ये दोनों भांगे वर्ज्य माने गये हैं। अति कर्कश आचरण से मरकर असंयमी देव बनना यह भी अपवाद निरपेक्ष एकान्त हठ रूप होने से अश्रेय मार्ग ही है। उत्सर्ग और अपवाद से सापेक्ष बर्ताव रखना यानि स्याद्वाद पूर्वक प्रवृत्ति करना यही शुद्ध मुनि मार्ग है।

( आ० कुन्द कुन्द कृत, प्रवचन सार चरणानुयोग चूलिका )

आ० कुन्द कुन्द इन पाठों से मुनियों को उपाधि रखने की आम इजाजत देते हैं। भूलना नहीं चाहिये कि ममत्व होने से ही

इनमें दूषण माना गया है अतः मुनियों के लिये उपाधि रखने की नहीं बल्कि उसमें मूर्च्छा रखने की मना है, जो बालग्ग० वगैरह गाथाओं से स्पष्ट है।

दिगम्बर मुनि भी मोर पीच्छ वगैरह उपाधि को रखते हैं।

दिगम्बर—दिगम्बर मुनिओं के लिये "मोर पीच्छ" यह बाह्यलिंग है, "उपाधि" है, एवं संयम का उपकरण है। इसके बिना वे कदम भी नहीं उठा सकते हैं।

१—मोर पीच्छ रखने से ५ गुण हैं।

( पं० चंपालालजी कृत चर्चा सागर चर्चा-२१० )

२—सप्तपादेषु निष्पिच्छः कायोत्सर्गात् विशुध्यति ॥
गव्यूति गमने शुद्धि मुपवासं समश्नुते ॥

( चारित्र सा.र, तथा चर्चा सागर चर्चा ७ )

३—मुनि विना पीच्छ ७ कदम चले तो कायोत्सर्ग रूप प्रायश्चित करें।

( आ० इन्द्र नन्दी कृत छेद पिंडम् गा० ८० )

४—पीछी हाथ से गीरपड़ी अर पवन का वेग अत्यंत लगा। तब स्वामी ( आ० कुन्द कुन्द ने ) कही, हमारा गमन नहीं, क्योंकि मुनिराज का बाना विना मुनिराज पीछाणा नहीं जाय।

(एलक पन्नालालजी दि० जैन सरस्वति भूवन बोम्बे का गुटका में आ० कुन्द कुन्द का जीवन चरित्र, सूर्य प्रकाश श्लो० १५२ की फूट नोट पृ० ४१ से ४७)

इसके अलावा दिगम्बर साधुओं को कमण्डल, पुस्तक, कलम, कागज, रूमाल, पट्टी वगैरह उपाधि रखना भी अनिवार्य है। आज दिगम्बर मुनि यज्ञोपवीत देते हैं चटाई व पट्टा पर बैठते हैं बड़े २ महलों में ठहरते हैं घास के ढेर पर सोते हैं इनकी भक्ति के लिये साथ में मोटर रक्खी जाती है यह सब मूर्च्छा न होने के कारण

दूषण रूप नहीं है। मूर्च्छा हो तो शरीर भी परिग्रह है अतः मूर्च्छा के अभाव में यह सब अपरिग्रह रूप हैं इतना तो हमें मंजूर है।

जैन—यदि दिगम्बर मुनि उपधि रखने पर भी अपरिग्रही है तो श्वेताम्बर मुनि भी उपधि रखने पर अपरिग्रही हैं।

और श्री तीर्थकर भगवान भी छै पर्याप्ति की वर्गणा रूप पर द्रव्य को लेते हैं मगर वे अपरिग्रही ही हैं। कारण ! मूर्च्छा नहीं है। इसी प्रकार मुनि भी अमूर्छित रूप से उपधि रक्खें तो अपरिग्रही ही है।

दिगम्बर—अजी ! मुनि जी कुछ भी करें उससे हमारा कोई भी वास्ता नहीं है सिर्फ इतना होना चाहिये कि वे वस्त्र धारी न हों, नंगे हों। वास्तव में दूसरी २ चीज परिग्रह हो, या न हो, मगर वस्त्र तो परिग्रह ही है। आ० कुन्द कुन्द दूसरी उपधि की आज्ञा देते हैं मगर वस्त्र का नाम लेकर निषेध करते हैं देखिये प्रमाण

१—पंचविह चेल चायं, खिदिसयणं दुविह संजमं भिक्खू।
भावं भाविय पुव्वं, जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं ॥ ८१ ॥

( आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गा० ७९, ८१ )

२—जे पंच चेल सत्ता ॥ ७६ ॥ ( मोक्ष प्राभृत )

३—पंचच्चेल च्चाओ ॥ १२४ ॥ क-प्रति ॥

अंडज, बुंडज रोमज, चर्म्म च वल्कज पंच चेलानि ॥
परिहृत्य तृणज चेलं, यो गृह्णीयान्न भवेत् स यतिः।

(आ० देवसेन कृत, भाव संग्रह गा० १२४.)

४—यदि मुनि दर्प और अहंकार से वस्त्र ओढले तो पंच कल्याणक, यदि अन्यकारणसे ओढले तोमहाव्रतभंग हो जाय।

( पं० चम्पालालजी कृत चर्चासागर पृ० ३२५ पं० परमेष्टीदास कृत, चर्चा समीक्षा पृ० २२४ )

५--लिंगं जह जादरूप मिदि भणिदं ॥ २६ ॥

( आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचनसार )

सारांश यह है कि मुनि पांचों प्रकार के वस्त्र न पहिने ! नंगापन ही मुनि लिंग है ।

जैन--मैं पहिले से ही बता चुका हूं कि आ० कुन्द कुन्द ने शुरू २ में पाँच प्रकार के वस्त्रों का निषेध किया, इससे तो निम्न बातें विना संशय निर्णीत होती जाती हैं ।

१-आ० कुन्द कुन्द के समय पर्यंत जैन निर्गन्थ पाँच प्रकार के वस्त्र पहिनते हैं।

२-उस समय तक के शास्त्रों में मुनिओं के लिये पाँच जाति के वस्त्रों की आज्ञा है ।

३-वस्त्र मात्र का निषेध न करके पाँच प्रकार का ही निषेध किया इससे भी पाँच ही प्रकार के वस्त्र उस समय पर्यन्त ग्रहण किये जाते थे, यह भी निर्विवाद हो जाता है ।

४-दिगम्बर साधु पाँच जाति से भिन्न वस्त्र पहने तो दोष नहीं है, सिर्फ पाँच का ही त्याग होना चाहिये । क्योंकि पाँच जाति में ही परिग्रह दोष है । छट्टे प्रकार के वस्त्र में वह दोष नहीं है ।

५-दिगम्बर मुनि तृणज चटाई को ग्राह्य मानते हैं यानी लेते हैं । यद्यपि आ० देव सेन ने छठी तृणज जाति का निषेध किया किन्तु दिगम्बर मुनि उनकी एक भी नहीं सुनते । माने पाँच के अलावा छठी जाति का इस्तैमाल करते हैं और "खिदि सयण" के बजाय पट्ट पर सोते हैं।

६-सिर्फ पाँच जाति के वस्त्र के खिलाफ में ही यह सूलिंग

निकाला गया है माने तब से ही एकान्त दिगम्बरत्व की जड़ जमी है।

इन सब बातों के सोचने से क्या यह विवेक नहीं आता है, कि मुनियों का वस्त्र धारण ही असली वस्तु है और एकान्त नग्नता का आग्रह नकली वस्तु है?

सब उपधि, रोमज-पीछी, बुंडज-पीछी बन्धन, पुस्तक बन्धन, रुमाल वस्त्र और कागज को रक्खे वो तो सच्चा मुनि, और आगमोक्त होने पर भी सिर्फ आ० कुन्द कुन्द द्वारा निषिध्ध उपधि को रक्खे वह मुनि ही नहीं। यह कहां का न्याय? ऐसी पाबन्दी एकान्त वाद में ही हो सकती है।

न्याय के जरिये तो दि० आचार्य भी वस्त्रादि की आज्ञा देते हैं, जो आगे सप्रमाण बतोया जायगा। यहाँ तो इतना ही विचारणीय है कि आदिम दिगम्बर शास्त्र निर्माता ने किस प्रकार जैन दर्शन में मत भेद की नींव डाली और जैन नाम को हटा कर "दिगम्बर" नाम को ही प्रधान बनाया।

"सिर्फ नंगे रहो, दूसरी दूसरी उपधिकी छूट" इस एकान्त नंगे पन की ओट में क्या २ नाच होरहा है यह देखा जाय तो अपने को दुःख ही होता है। कतिपय "नग्न" माने दिगम्बर परिभाषा के अनुसार "अपरिग्रही" मुनि निम्न प्रकार जाहिर हुए हैं:—

१—तिलतुसमेत्तं न गिहदि हत्थेसु। १८।

दिगम्बर मुनि को सीर्फ हाथ से पैसा को छूने की मना है।

( सूत्र प्राभृत )

२—क्वचित्कालानु सारेण सूरिर्दव्यमुपाहरेत्।
गच्छ पुस्तक वृध्यर्थं अयाचितमथान्यकं ॥ ८६॥

माने दिगम्बर मुनि शास्त्र और संघ के लिये रुपये जोड सकते हैं

( सूत्र प्राभृत गा० १८ की श्रुत सागरी टीका )

( दि० आ० इन्द्र नन्दी कृत नीति सार विक्रम की १३ वी शताब्दी )

३ दिगम्बर मुनि........ ....................................... मोरेना पधारे, एक अच्छे कमरे में ठहरे थे, जाड़ा जोरों से पड़ रहा था भक्तों ने कमरे में घास का ढेर लगा दिया मुनिजी रात को उसके ठीक बीच में सो गये भक्तों ने चारों ओर अंगीठी जला रक्खी। कम नसीबी से आग की एक चिनगारी घास में जा लगी और मुनि जी भुंज गये।

४-वि० सं० १९९६- में भी आरा में ऊपरसी ही परिस्थिति में ३ दिगम्बर मुनि अग्नि शरण हुए हैं।

५—आश्चर्य की बात है कि दिगम्बर मुनि न वस्त्र रक्खें न लंगोटा रक्खें न गांठ रक्खें पर लाखों रुपये जमा कर सकते हैं।

नमुना—करीब २ साल पेस्तर की घटना है कि दिगम्बर मुनि जय सागर जी हैदराबाद दक्षिण में पधारे तब उनके पास लाखों रुपये जमा थे इनकी खातिर करने के लिये दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला ने एक अपने शास्त्री जी को संभवतः प्रो० धर्मचन्द जी B. S. C. को भेजा था।

६—इसके अलावा और भी दिगम्बरीय अपरि ग्रहता के नमूने जैन जगत और सत्य संदेश में प्रकट हो चुके हैं।

७—मूलाचार में भी गुरु द्रव्य और साधर्मिक द्रव्य का जिक्र है।

८—यद्यपि यहाँ पाँच वे आरे में कोई मोक्ष नहीं पाता है, परन्तु दिगम्बर विद्वान् पाँचवे आरे में भी दिगम्बर को नग्नता के कारण ही मोक्षगमन मानते हैं जैसा कि—

तदा ते मुनयो धीराः शुक्लध्यानेन संस्थिताः ।
हत्वा कर्माणि निःशेषं प्राप्ताः सिद्धिं जगद्धिताम् ॥ ४२ ॥

(ब्र० नेमिदत्त कृत आराधना कथा कोश भा० ३ कथा ७२ नंद वंशोच्छेदक चाणक्य की कथा श्लो ४२ पृ० ३१३)

पर उसने (चाणक्य ने) उसे बड़ी सहन शीलता के साथ सह लिया और अन्त में अपनी शुक्ल ध्यान रूपी आत्म शक्ति से कर्मों का नाश कर सिद्ध गति लाभ की × + चाणक्य आदि निर्मल चारित्र के धारक थे सब मुनि अब सिध्धि गति में ही सदा रहेंगे।

(पं० उदयलाल काशलीवाल कृत, आराधना कथाकोश का हिन्दीभाषांतर पृ० ४६ से ५१)

९—शान्ति देवी ने भी आत्म समाधि प्राप्त की, कारण? दिगम्बरता आदि

(श्रवण बेलगोल के शिला लेख नं० १)

१०—नित्यस्नानं गृहस्थस्य, देवार्चन परिग्रहे।
यतेस्तु दुर्जनस्पर्शात्, स्नानमन्यद् विगर्हितं ॥ १ ॥

तत्र यतेः रजस्वलास्पर्शे चण्डालस्पर्शे शुनक गर्दभ नापित योग, कपालस्पर्शे वमने विष्टोपरि पाद पतने शरीरोपरि काक विण्मोचने, इत्यादि स्नानोत्पत्तौ सत्यां दंडवद् उपविश्यते, श्रावकादिक प्रक्षाप्रादिको वा जलं नामयति, सर्वांगं प्रक्षालनं क्रियते, स्वयं हस्तमर्दनेन अंगमलं न दूरी क्रियते। स्नाने संजाते सति उपवासो गृह्यते, पंच नमस्कार शतमष्टोतरं कायोत्सर्गेण तप्यते एवं शुद्धिर्भवति।

मानें दिगम्बर मुनि को जल स्नान जा है, सीर्फ धस्त्र धेजा है

(आ० कुन्द कुन्द कृत मोक्ष प्राभृत गा० ९८ की श्रु तसागरी टीका १०१)

उपरोक्त सब बातें दिगम्बरीय अपरिग्रहता को आभारी हैं।

महानुभाव ! इस अपरिग्रहता से तो यही चारितार्थ होता है कि-गुड़ खाना और गुल गुले से परहेज करना अर्थात्-उपाधि रखना और वस्त्र नाम का परहेज करना

दिगम्बर—वस्त्र वाला मुनि लज्जा परिषह को नहीं जीत सकता है।

जैन—परिषह २२ हैं, इनमें लज्जा नाम का कोई परिषह नहीं है। दिगम्बर ने अपनी मनवाने के लिये यह नया तुक्का चला रक्खा है।

दिगम्बर—वस्त्र तो मुनि के लिये पुरुषेन्द्रिय के विकार को छीपाने का साधन है। मान वस्त्र वाला मुनि जितेन्द्रिय नहीं है। दिगम्बर मुनि ही जितेन्द्रिय है।

जैन—दिगम्बर मुनि कितने जितेन्द्रिय हैं उनके कई प्रमाण "जैन जगत्" की फाइल में प्रकट हो चुके हैं। पूर्वोक्त दिगम्बर मुनि जय सागर जी ने क्या २ गुल खेला है तथा जबलपुर में दिगम्बर मुनि मुनीन्द्र सागर के संघ के तीनों मुनियों की कूप पतन आदि कैसी २ शोचनीय दशा हुई है यह जैन जगत् से छिपा नहीं है मगर वे भी बेचारे करे क्या ? मनुष्य को नवम गुण स्थानक तक वेदोदय होता है, जो दिगम्बर होने मात्र से दबता नहीं है। दिगम्बर के प्रायश्चित ग्रंथ भी दिगम्बरी दशा में चतुर्थव्रत दूषण का स्वीकार करते हैं देखो

जंता रूढो जोणीं ॥ ४६ ॥ अएणोहिं अमुणिंद ॥ ५१ ॥ परेहिं विएणाद मेक वारम्मि ॥ ५२ ॥ इंदिय खलणं जायदि० ॥ ४८ ॥

( आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपींडम् )

दिगम्बर—यदि वे मुनि कत्था का प्रयोग कर लेते तो उन की यह दशा नहीं होती वे कच्चे होंगे।

जैन—महानुभाव ! दवाई प्रयोग से जितेन्द्रियता आती है कि मनके मारने से ! दवाई से प्राप्त की हुई बाह्य कृतिम जितेन्द्रियता से क्या लाभ ?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्रों में दिगम्बर मुनि को नवम गुण स्थानक तक पुं० स्त्री और नपुं० इन तीनों वेद का उदय माना है जिनमें पुं० वेद अन्य गोचर है,

अतः उसे प्रयोग से दबा कर जितेन्द्रिय बनना आवश्यक है

जैन—ऐसी जितेन्द्रियता दिगम्बर को ही मुबारक हो, नवम गुण स्थान वर्ती दिगम्बर मुनि में तीनों वेद का उदय मानना और श्वेताम्बर मुनि पर सीर्फ वस्त्र के ही जरिये झूठा आक्षेप करना, यह नितान्त मताभिनिवेश ही है।

दिगम्बर—श्वेताम्बरीय आचेलक्य कल्प में भी वस्त्र का निषेध स्पष्ट है।

जैन—इस कल्प से निषेध नहीं किन्तु विधान ही किया गया है।

जो मानता है कि-अपरिग्रहता से वस्त्रों का सर्वथा निषेध हो जाता है। उसको इस कल्प की आज्ञा से ठीक उत्तर मिल जाता है।

इस अचेलक कल्प के स्वतंत्र विधान से निर्विवाद सिद्ध है कि-अपरिग्रहता में वस्त्र की व्यवस्था होती नहीं थी अतः इस स्वतंत्र कल्प के द्वारा नयी व्यवस्था करनी पडी। सचमुच अपरिग्रहता। माने अममत्व के द्वारा वस्त्र के विधि-निषेध की व्यवस्था कैसे

हो सकती है ! वस्त्रों की मर्यादा के लिये स्वतंत्र विधान अनिवार्य था, जो आचेलक्य से बताया गया है।

संस्कृत वगैरह भाषाओं में सर्वथा निषेध या अल्प निषेध करना हो, तब समासमें अ और अन् शब्द का प्रयोग किया जाता है जैसे कि—

अ=निषेध । अ+जीव=जीव से भिन्न, जीव रहित । अ+वृष्टि=वृष्टि का अभाव ।

अ=अल्पत्व । अ+नुदरी कन्या=छोटे पेटवाली कन्या । अ+ज्ञ=अल्पज्ञ । अ+वृष्टि=अल्पवृष्टि । अ+ज्ञान=अल्प ज्ञान विपरीतज्ञान । अ+बला=अल्पबला । इत्यादि

इस प्रकार यहाँ अचेल का अर्थ भी अ+चेल माने "अल्प वस्त्र होना" यही किया गया है।

इस कल्प से वस्त्रों का निषेध नहीं बल्कि मर्यादा हो जाती है। इस मर्यादा से भिन्न या अधिक वस्त्र रखने वाला निर्ग्रन्थ मुनि वकुश है जो बात तत्त्वार्थ सूत्र के "विविध विचित्र परिग्रह युक्तः बहु विशेष युक्तो पकरणा कांक्षी" इत्यादि से स्पष्ट है। दिगम्बर आचार्य को भी आचेलक्य का यही अर्थ सम्मत है।

दिगम्बर—दिगम्बरों ने आचेलक्य कल्प का विधान ही नहीं किया है। फिर सम्मति कैसी ? जो अपरिग्रह से ही अचेलभाव का स्वीकार करते हैं। वे अचेलक कल्प का भिन्न विधान करके अपनी स्वीकृति को कमजोर क्यों बनावें ?

जैन—अपरिग्रहता में वस्त्र की व्यवस्था नहीं है अतः एव दिगम्बर ग्रन्थकार आचेलक्य रूप वस्त्र व्यवस्था का अलग विधान करते हैं। देखिये—

आचेलुक्कुद्देसिय सेज्जाहर रायपिंडं किदियम्मं ।
वद जेट्ठ पडिक्कमणं मासं पज्जो समण कप्पो ॥

( दि० आ० वट्टकेरकृत मूलाचार परि० १० गा १८ आ० नि० गा० १२४६ )

अब वे ही आचार्य मुनि के लिये उपाधि वगैरह की भी आज्ञा देते हैं। देखिये—

पिंडोवधि सेज्झा ओ, अविसोधिय जो य भुंजदं समणो।
मूलठाणं पत्तो भुवणे सु हवे समणपोल्लो ॥ १० ।२५।

टीकांश—पिंड उपाधि शय्यां आहारोपकरणाऽऽवासादिकम विशोध्य इत्यादि। समणपोल्लो अर्थात् श्रामण्यतुच्छः।

फासुग दाणं फासुगउवधिं तह दोवि अत्तसोधीए।
जो देदि जोय गिरहदि, दोएणंपि महफ्फलं होइ ॥ । १०। ४५॥

टीकांश—हिंसादि दोष रहित मुपकरणम्

णाणुवहि संजमुवहिं सउचुवहिं अएणमप्पुवहिं वा ।
पयदं गह-णिक्खेवो संमिदी आदाण णिक्खेवा ॥

मुनि को ज्ञानोपधि संयमोपधि और भिन्न २ उपाधि होती है। ( परि० १ गा० १४ )

मुनि के लिये और भी उपाधि का जिक्र। ( प० २ गा० ११४)

गुरु साहम्मिय दव्वं, पुत्थयं मएणं च गेरिहदुं इच्छे ।
तेसिं विणयेण पुणो णिमंतणा होइ कायव्वा ॥ १३८ ॥

गुरु द्रव्य, साधर्मिक मुनि द्रव्य, गुरु पुस्तक (प०४ गा० १३८)

सारांश—अचेल कल्प भी वस्त्र की मर्यादा करने वाला होने से वस्त्र विधान का अंग ही है।

दिगम्बर—वस्त्र वाले को सामायिक चारित्र नहीं होता है।

जैन—सामायिक देशावगासिक और पौषध ये साधु जीवन के प्राथमिक शिक्षा पाठ है। इन सामायिक आदि को वस्त्र वाले

गृहस्थ ही करते हैं, फिर कैसे माना जाय कि सवस्त्र दशा में सामायिक नहीं है ?।

यद्यपि दि० आचार्यों को सवस्त्र सामायिक आदि करने की बात खटकती है और उस सिलसिला में किसी २ ने तो इन श्रावक व्रतों को उड़ाने तक की कोशीश भी की है, किन्तु वे कामयाब न हुए। इस बात का निम्न लिखित मत भेदों से पत्ता पाया जाता है।

A ६ दिग् ७ देशा ८ नर्थ दंड विरति ९ सामायिक १० पौषधोपवासो ११ पभोग परिमाणा १२ तिथिसंविभाग व्रत संपन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणान्तिकीं सलेखनां जोषिता च ॥ २२ ॥ ※

( दिगम्बरीय तत्वार्थ सूत्र अ० ७ )

B ६ दिग्परिमाण, ७ भोगोपभोगप० ८ अनर्थ दंड विरति ९ सामायिक १० देसावगासिक ११ पौषध १२ अतिथि संविभाग

( रत्न करंड श्रावका चार पं आशाधर कृत सागारधर्मामृत )

C ९ सामाइयं च पढमं, १० विदियं च तहेव पोसहं भणियं ॥ ११ तइयं अतिहि पुज्जं, १२ चउत्थं संलेहणा अंते ॥ २६ ॥

( आ० कुन्द कुन्द कृत चारित्र प्राभृत गा० २६ )

---

※ अतिथिसं विभाग की दिगम्बर विधि इस प्रकार है।

व्रतम तिथि संविभागः, पात्र विशेषाय विधि विशेषेण।
द्रव्य विशेष वितरणं, दातृ विशेषस्य फल विशेषाय। ५। ४१।
ज्ञानादिसिध्यर्थ-तनुस्थित्यर्था—न्नाय यः स्वयम्।
यत्नेनाऽतति गेहंवा, न तिथि र्यस्य सोऽतिथिः। ५। ४२।
यतिः स्या दुत्तमं पात्रं, मध्यमं श्रावकोऽधमम्।
सुदृष्टि स्तद्वि शिष्टत्वं, विशिष्ट गुण योगतः। ५। ४४।
कृत्वा माध्यान्हिकं भोक्तु—मुद्युक्तो ऽतिथये ददे।
स्वार्थ कृतं भक्तमिति, ध्यायन्नतिथि मीक्षताम्। ५। ५१।

( पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृत अ० ५ )

D E ऊपर के अनुसार

( आ॰ शिवकोटिकृत रत्नमाला ) ( आ० देव सेन कृत भाव संग्रह )

F भोगोपभोग विरमण के स्थान पर देशावगासिक का स्वीकार और शेष ऊपर के अनुसार

( आ० जिनसेन कृत आदि पुराण पर्व १० )

G सामायिक पौषध का अस्वीकार, परिभोग का भिन्न आविष्कार, देशावगासिक का स्वीकार और शेष ऊपर के अनुसार ( आ० वसुवन्दीकृत )

आजकल भी दिगम्बर समाज में जो सामायिक किया जाता है, वह ५ या १० मिनट तक ध्यान रूप और जो पौषध किया जाता है वह सर्फि उपवास रूप किया जाता है, माने वे उसमें असली रूप से नहीं रहे हैं। दिगम्बरत्व की रक्षा के कारण उन सामायिक देशावगासिक और पौषध व्रतों की कैसी शोचनीय दशा हुई है ? अस्तु।

दिगम्बर—वस्त्र वाले को छट्ठा प्रमत्त गुण स्थान की प्राप्ति नहीं होती है।

जैन—यह भी आप की मनमानी कल्पना है यदि मूर्च्छा वाले उस गुण स्थान को नहीं पा सकते हैं ऐसा माना जाय तब तो वाकई में ठीक है मगर आपने तो कुछ का कुछ मान रक्खा है। असल में तो दिगम्बर आचार्य वस्त्र वाले को ही नहीं वरन् गृहस्थ को भी छठा और सातवा गुण स्थान की प्राप्ति बताते हैं।

वे फरमाते हैं कि जीव पांच वे गुण स्थान के बाद सातवे गुण स्थान में ही चढ जाता है। और बाद में लौट कर छट्टे गुण स्थान में आता है। गुण स्थान प्राप्ति का नियम है कि कोई जीव पाँचवे से छठ में नहीं जाता है, माने पंचम गुण स्थान वर्ती

श्रावक ध्यान दशा में अप्रमत गुण स्थान को पहुंच जाता है और अंतर्मुहूर्त के वाद छठा में आता है

इस प्रकार शुरुमें गृहस्थ दशा में ही प्रमत्त व अप्रमत्त आदि गुण स्थान की प्राप्ति होती है वाद में कोई महानुभाव मुनि भी हो जाता है, मगर नग्न होते ही छट्टा या सातवाँ गुण स्थान मिल जाय ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है। भूलना नहीं चाहिये, दिगम्बर मत में पांचवे से सीधा छुठा गुण स्थान की प्राप्ति मानी नहीं है।

दिगम्बर—क्या आप इस सम्बन्ध में किसी दिगम्बर विद्वान् का प्रमाण दे सकते है।

जैन—महानुभाव ! दिगम्बर शास्त्रों में छट्टा सातवाँ गुण स्थान पाने में यह आम मान्यता है। अतः इस विषय के अनेक प्रमाण हैं।

आप की प्रतीति के लिये यहाँ एक प्रमाण दिया जाता है। जैसाकि—

"फिर यही सम्यग दृष्टि जब अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को ( जो श्रावक के व्रतों को रोकती है ) उपशम कर देता है तब चौथे स पाँचवे देश विरत गुण स्थान में आ जाता है इस दरजे में श्रावक की ग्यारह प्रतिमा पाली जाती है इससे आगे के दरजे साधु के लिये है।

यही श्रावक जब प्रत्याख्यानवरण कषाय का ( जो साधु व्रत को रोकते हैं ) उपशम कर देता है और संज्वलन व नौ कषाय का ( जो पूर्ण चारित्र को रोकती है ) मंद उदय साथ साथ करता है तब पाँचवे से सातवे गुण स्थान अप्रमत्त विरत में पहुँच जाता है, छठे में चढ़ना नहीं होता है इस सातवे का काल

अंतर्मुहूर्त का है। यहाँ ध्यान अवस्था होती है। फिर संज्वलनादि तेरह कषायों के तीव्र उदय से प्रमत विरत नाम छट्टे गुण स्थान में आजाता है।"-

(आ॰ कुन्द कुन्द कृत पंचास्तिकाय गा० १६१ की ब्र० शीतलप्रसाद कृत भाषा टीका सं० २ पृ० ७६)

ऊपर के प्रमाणों से भी यही मानना होगा कि वस्त्र वाला छट्टा व सातवाँ गुण स्थान का अधिकारी है, माने गृहस्थ और स्त्री ये सब इन गुण स्थान के अधिकारी हैं.

यही कारण है कि भरत चक्रवर्ति को गृहस्थ दशा में ही केवल ज्ञान हुआ था दिगम्बर विद्वानों ने भी इस मान्यता को लोकोक्ति के रूप में स्वीकृति दे दी है जिसकी विशेष विचारणा "मोक्ष योग्य" अधिकार में की जायगी।

दिगम्बर--वस्त्र वाले को जैन मुनि मान लो, मूर्च्छा के अभाव होने से अपरिग्रही निर्गन्थ मान लो, छट्टा और सातवें गुण स्थान के अधिकारी मानलो मगर उसे मोक्ष हरगिज नहीं मिल सकती है, क्योंकि नंगापन ही मुनि लिंग है। और वही मोक्ष मार्ग है। जैसे कि लिंगं जह जाद रूप मिदि भणिदं ॥ २४ ॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचन सार गा० २४)

जैन--"ही" और "भी" ये एकान्त वाद और अनेकान्त वाद के भेदक सूत्र हैं। "नग्नता ही मोक्ष मार्ग है" ऐसा कहना ही एकान्त वाद है, और नग्नता भी मोक्ष मार्ग है, ऐसा कहना सो अनेकान्त वाद है। आप "अनेकान्त वादी" बन जाओ, जब आप को अपनी गलती ख्याल में आ जायगी।

आप मानते हो कि "नग्नता ही मोक्ष मार्ग है" तब तो मनुष्य के अतिरिक्त सब प्राणी, चूहा, कुत्ता, बिल्ली, सिंह, तोता, कौआ

पागल मनुष्य और दिगम्बर मुनि ही मोक्ष के लायक हैं वास्तव में वे सब दिगम्बर हैं। और सब सभ्यमनुष्य, दिगम्बर गृहस्थ तथा श्वेताम्बर मोक्ष के लिये अयोग्य हैं क्योंकि ये सब अदिगम्बर यानी श्वेताम्बर हैं। क्या यह ठीक मान्यता है! यद्यपि दिगम्बर के आदि आचार्य कुन्द कुन्द दिगम्बरत्व के ऊपर काफी जोर देते हैं मगर वे या कोई भी दिगम्बर आचार्य नग्नता ही मोक्ष मार्ग है ऐसा मानते नहीं हैं। खिलाफ में दिगम्बर और श्वेताम्बर सब कोई ऐसा अवश्य मानते हैं कि "सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः"। आ० कुद कुन्द स्वामी भी ताईद करते हैं कि—

सम्मत्तनाणजुत्तं, चारित्तं राग दोस परिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो, भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥ १०६ ॥

( पंचास्तिकाय समयसार गा० १०६ )

नाणेण दंसणेण य, तवेण य चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे, मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥३० ॥

( दर्शन प्राभृत गा० ३० )

णय होदि मोक्खमग्गो लिगं जं देहणिम्ममा अरिहा।
लिगं मुइत्तु दंसण णाण चरित्ताणि सेवंत्ति ॥ ४३९ ॥
दंसण णाण चरित्ताणि, मोक्ख मग्गं जिणा बिंति ।४४०।

( समयसार प्राभृत गा० ४३९—४४० )

सामान्य बुद्धि वाला भी समझ सकता है कि आत्मा मोक्ष में जाती है ज्ञान दर्शन वगैरह आत्मा के गुण है अतः इन सम्यक् दर्शन वगैरह से ही मोक्ष हो सकता है, विरुद्ध में शरीर मोक्ष में नहीं जाता है वह चाहे उपाधि सहित हो या उपाधि से रहित हो, मगर यहाँ ही पड़ा रहता है। इस हालत में नग्नता मोक्ष मार्ग नहीं हो सकती है! सम्यक् दर्शन आदि को छोड़ कर नग्नता को मोक्ष

मार्ग मानना यह न्याय रूप कैसे हो सकता है ? वस्त्र या उपाधि में ऐसी कौन सी ताकत है जो कि सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र होने पर भी मोक्ष को रोके ?

दिगम्बर--जनाब ! वस्त्र केवल ज्ञान को रोकता है।

जैन—महानुभाव ! यह आपकी सूझ अर्वाचीन दिगम्बर पंडितों की ही कृपा का फल है। परन्तु दिमाग से जरा सा तो सोचिये कि यह किस हद तक सत्य है। एक मामूली ज्ञान भी वस्त्र पहिनने से न रुकता और न दब सकता है। तो केवल ज्ञान जो कि अघाति चार कर्मों के द्वारा भी नहीं दब सकता है। कैसे दब जायगा उस लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान को सिर्फ देह से ही सम्बन्धित वस्त्र दबा देवें या भगा देवें यह तो दिगम्बरत्व के आग्रही को ही विश्वास हो सकता है।

दिगम्बर "शाकटायनाचार्य" भी साफ फरमाते हैं कि-वस्त्रा द् न मुक्तिविरहो भवतीति इस दिगम्बर मान्यतानुसार पाण्डवों को गले में लोहा होने पर भी केवल ज्ञान की प्राप्ति व उपस्थिति मानी जाती है, फिर सवस्त्र दशा में केवल ज्ञान का अभाव क्यों माना जाय ?

केवलज्ञान सिंहासन स्वर्णकमल इत्यादि विभूतियाँ से या देह गुणों से दब जाता नहीं है, मगर वस्त्र से दब जाता है। यह कितनी बुद्धि शून्य कल्पना है ?

( समय प्रा० गा० ११, १७ )

सारांश—केवल ज्ञान ऐसी पौद्गलिक वस्तु नहीं है कि जो वस्त्र से रुक जाय !

दिगम्बर—उपधि के लिये हमारे शास्त्र का पाठ दीजिये।

जैन--उपधि के बारे में दिगम्बरीय प्रमाण निम्न हैं।

१-अप्पडिकुट्ठं उवाधिं, अपत्थणिज्जं असंजद जणेहिं
मूच्छादि जणण रहिदं, गेण्हदु समणो यदि वि अप्पं ॥ २२ ॥
आहारे व विहारे देशं कालं समं खमां उपाधिं ।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥ ३० ॥

( आ० कुन्द कुन्द प्रवचन सार )

दिगंम्बर मुनि उपाधि का स्वीकार करे, परन्तु उस में ममत्व नहीं रक्खें । आहार और विहार में उपाधि की अपेक्षा को समझ कर योग्य प्रवृति करे ।

२-सेवाहि चउविहलिंगं, अब्भिंतरलिंगसुद्धि मावण्णो ।
बाहिर लिंगमकज्जं, होइ फुडं भाव रहियाणं ॥ १०६ ॥

( आ० कुंद कुंद कृत भाव प्राभृत गा० १ ९ )

३-ववहारओ पुण णओ, दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोक्ख पहे ।
णिच्छयणयओ दु णिच्छदि, मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥

टीकांश-व्यवहारिक नयो द्वे लिंगे मोक्षपथे मन्यते । द्रव्यलिंगमात्रेण संतोषं मा कुरु किन्तु द्रव्यलिंगाधारेण निश्चय-रत्न त्रयात्मक निर्विकल्प समाधिरूप भावनां कुरुत । द्रव्य-लिंगाधार भूतो योऽसौ देहः तस्य ममत्वं निषिध्धं ।

मान व्यवहारनय मोक्षमार्ग में मुनि वेश और ज्ञानादि एवं दोनों का स्वीकार करता है और निश्चयनय मोक्ष मार्ग में सर्व लींगों का निषेध करता है ।

आ० कुंद कुंद कृत समय प्राभृत गा० ४४४
आ० जिन सेन कृत तात्पर्य वृत्ति पृ० २०८ )

४-पिंडं उवाधिं सेज्जं, उग्गम उप्पाद णेसणादीहिं ।
चारित्त रक्खणट्ठं, सोधिंतो होइ सुचरितो ॥ २६३ ॥

( भगवती आराधना गा० १९२ पृ० ११४ )

५—उपाधि, ज्ञानोपाधि, संयमोपाधि, तप उपाधि इत्यादि

( आ० वट्टकेर कृत मूलाचार परि० १ गा० १४, परि० ३ गा ७-११४ परि० ४ गा० १३८ परि० १० गा० २५,४५ )

पिंडोवधि सेज्झाओ, अविसोधिय जोय भुंजदे समणो
मूल ठाणं पत्तो, भुवणे सु हवे समणपोल्लो ॥ २५ ॥
फासुगदाणं फासुगमुवधिं, तह दो वि अत्त सोधीए
देदि जो य गिण्हदि, दोण्हंपि महप्फलं होइ ॥ ४५ ॥

पिंड, उपाधि, शय्या, संस्तारक फासुक उपाधि वगैरह।

( मूलाचार परिच्छेद १० )

६-सम्यक्त्व ज्ञान शीलानि तपश्चेतीह सिद्धये।
तेषा मुपग्रहार्थाय स्मृतं चीवर धारणम्

( वाचक श्री उमा स्वातिजी )

७-८"अविविक्त परिग्रहाः" "उपकरणाभिष्वक्त चित्तो विविध विचित्र परिग्रह युक्तः बहु विशेष युक्तोपकरणा कांची तत्संस्कार प्रतिकार सेवी"

ये सब भिन्न २ निर्ग्रन्थों के लक्षण हैं, उप करण के कारण ही निर्ग्रन्थों में जो जो भेद हैं वे यहां बताये गये हैं इसीसे सप्रमाण है कि पांचो निर्ग्रन्थ वस्त्रादि उपकरण को रखते हैं।

द्रव्य लिंगं प्रतीत्य भाज्याः

श्रमणों का द्रव्य लिंग माने वस्त्रादि वेष भिन्न २ प्रकार के होते हैं और इस द्रव्यलिंग के जरिये निर्ग्रन्थ भी अनेक प्रकार के हैं (पूज्यपाद कृत सर्वार्थ सिद्धि और आ० ...... कृत राजवार्तिक पृ० ३५८ ३५९)

"कम्बलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालते" इत्यादि

( दि० आ० श्रुत सागर कृत तत्वार्थ अ० ९ सू० ४ की टीका, चर्चा सागर समीक्षा प्रस्तावना )

१० तपः पर्याय शरीर सहकारि भूतमन्न पान संयम शौच ज्ञानोपकरण तृण मय प्रावरणादिकं किमपि गृह्णन्ति तथापि ममत्वं न करोति ।

अन्नोपकरण, पानोपकरण, संयमोपकरण, शौचोपकरण ज्ञानोपकरण और तृणज वस्त्र वगैरह दिगम्बर मुनि के उपकरण हैं। वे इनमें ममता न करें।

( ब्रह्म देव कृत परमात्म प्रकाश गा० २१६ की टीका पृष्ट २३२ )

भरहे दुसम समये संघ कमं मोव्विऊण जो मूढो ।
परिवट्टइ दिगविरओ, सो समणो संघ बाहिरओ ॥१॥
पासत्थाणं सेवी, पासत्थो पंचचेल परिहीणो ।
विवरीयट्ठपवादी, अवंदणिज्जो जइ होई ॥

( दि० भद्रबाहु संहिता खं० ३ अ० ७ गा० )

११ कोऽपवाद वेशः ? कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वा उपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति, तेन मण्डपदुर्गे श्री वसन्त कीर्ति स्वामिना चर्यादि वेलायां तट्टी सादरा दिकेन शरीर माच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुंचति, इत्युपदेशःकृतः संयमिना मित्यपवादवेषः ।

तथा नृपादि वर्गोत्पन्न परम वैराग्यवान् लिंग शुद्धि रहितः उत्पन्न मेहनपुट दोष लज्जावान् वा शीताद्यसहिष्णुर्वा तथा करोति सोऽप्यपवादलिंगः प्रोच्यते ।

( आ० कुन्द कुन्द कृत दर्शन प्राभृत गा० २४ की उभय भाषा चक्रवर्ति दि० कलिकाल सर्वज्ञ आ० श्रुतसागर कृत टीका पृ० २१ । पं० परमेष्ठीदास कृत चर्चा सागर समीक्षा प्रस्तावना । )

१२—"णिक्खेवो" यत् किंचित् वस्तु पुस्तक कमण्डलु मुख्यं कयाचिन्निक्षिप्यते मुच्यते ध्रियते तन्निक्षेप स्थानं दृष्ट्वा तथैव

प्रतिलिख्य च ध्रियते मयूरपिच्छस्याऽसन्निधाने "मृदुवस्त्रेण" कदाचित्तथा क्रियते निक्षेपणा नाम्नी पंचमी समीति भवति ॥

( चारित्र प्राभृत गा० ३६ श्रुतसागरी टीका )

१४—मुनि चारित्रो पकरण पीछी के विना नहीं चल सकता है
( चारित्रसार, छेदपींडगा० ८०, चर्चासागर चर्चा०७, आ० कुन्द कुन्द चरित्र )

१५—तयोरुपकरणा सक्ति संभवात् आर्तध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्त ध्यानेन लेश्यादित्रयं भवतीति।

पांचो निर्गन्थ उपकरण वाले होते हैं उनमें से वकुश और प्रति सेवना कुशील को कभी आसक्ति भी होती है जब उनको आर्त ध्यान होता है तब शुरू की तीन लेश्या यें भी होती हैं।

( चारित्र सार, विद्वज्जन बोधक पृ० १७९ )

१६—मोक्षाय धर्मसिध्यर्थं शरीरं धार्यते यथा।
शरीर धारणार्थं च भैक्षग्रहण मिष्यते॥ १॥
तथैवोपग्रहार्थाय पात्र चीवरमीष्यते।
जिनै रूपग्रहः साधो रिष्यते न परिग्रहः॥ २॥

माने मोक्ष और धर्म की साधना में शरीर भिक्षा पात्र वस्त्र वगैरह उपकारक साधन हैं ये परिग्रह नहीं हैं किन्तु उपग्रह हैं।

( वा० अद्वसेन कृत"……)

१७—वस्त्र पात्राश्रयादिन्य-पराण्यपि यथोचितम्
दातव्यानि विधानेन रत्नत्रितयहेतवे॥ ( आ० अमितगति )

१८—शय्या सनोपधानानि, शास्त्रोपकरणानि च
पूर्वं सम्यक् समालोच्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः १२
गृह्णतोऽस्य प्रयत्नेन, क्षिपतो वा धरातले
भवत्य विकला साधो—रादान समिति स्फुटम् १३
शय्या, आसन, उपधान, शास्त्र उपकरण वगैरा……

( दि० आ० शुभ चन्द्र कृत ज्ञानार्णव अ० ८ श्लो० १२-१३ )

१६—कौपीनेपि समूर्च्छत्वा न्नार्हति यार्यो महाव्रतम् ॥
अपि भाक्त ममूर्च्छत्वात् साटकेऽप्यार्यिकार्हति ॥ २६ ॥

मूर्छा होने के कारण लंगोटी वाला श्रावक भी उपचरित महाव्रत के योग्य नहीं है, मगर "मूर्छा नहीं होने के कारण" वस्त्र वाली श्रमणी भी उपचरित महाव्रत के योग्य है। माने वस्त्र वाले को महाव्रत है मूर्छा वाले को नहीं है।

यदौत्सर्गिक मन्यद्वा, लिंगमुक्तं जिनैः स्त्रियाः
पुंवत्त दिष्यते मृत्यु काले स्वल्प कृतोपधेः ॥ ३८ ॥
देह एव भवो जन्तो-र्यल्लिंगं च तदाश्रितम् ॥
जातिवत्तद् ग्रहं तत्र, त्यक्त्वा स्वात्म ग्रहं वशात् ॥ ३६ ॥
शय्योपध्या-लोचना-न्न-वैयावृत्त्येषु पंचधा ॥
शुद्धिः स्यात् दृष्टि-धी-वृत्त विनयावश्यकेषु वा ॥ ४२ ॥

स्वोपज्ञटीकांश-स्यादसौशुद्धिः। कतिधा? पंचधा। केषु? शय्यादिषु विषयेषु। तत्र, शय्या वसति, संस्तरो. उपधिः-संयम साधनम्। "वृत्त-चारित्र" निरति चार प्रवृत्तिः ॥ ४२ ॥

बाह्यो ग्रन्थों गमत्ताणा—मान्तरो विषयैषिता ॥
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पान्थः शिवपुरं यतः ॥ ८६ ॥

माने शरीर इन्द्रिय वगैरह बाह्य ग्रन्थ है विषयेच्छा आंतर ग्रन्थ है, उनमें "ममता" न रक्खो। *

---

* निर्ग्रन्थो को त्याज्य बाह्य ग्रन्थ और अभ्यंतर ग्रन्थ का स्वरूप इस प्रकार है—

सो विय गंथो दुविहो, बज्झो अब्भिंतरो अ बोधव्वो।
अंतो अ चोद्दस विहो, दसहा पुण बाहिरो गंथो ॥ ८२३ ॥

विवेकोऽक्ष कषायां ग भक्तो पधिषु पंचधा ।
स्यात् शय्यो पधिकायान्न वैया वृत्य करेषु वा ॥२१७॥

इन्द्रिय, कषाय, शरीर, आहार व उपधि में या शय्या, उपधि, शरीर, आहार, व वैयावृत्य में विवेक रखना ॥ २१७ ॥

( सं० १२९६ में पं० आशाधर कृत सटीक सागार धर्मामृत अ० ८ )

२०–अपवित्र पटो नग्नो, नग्नश्चार्धपटः स्मृतः ।
नग्नश्च मलीनोद्वासी, नग्नः कौपीन वानपि ॥ २१ ॥
कषाय वाससा नग्नो, नग्नश्चानुत्तरीय मान् ।
अन्तः कच्छो बहिः कच्छो, मुक्तकच्छस्तथैव च ॥ २२ ॥
साक्षान्नग्नः स विज्ञेयो, दशनग्नाः प्रकीर्तिताः ॥ २३ ॥

माने-दश किस्मके नग्न होते हैं।

( दि० आ० सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार अ० ३ सं० १६६५ )

---

खेत्तं[1] वत्थु[2] धन्न[3] धन[4], संचओ[5] मित्त–णाइ–संजोगो[6] ।
जाण[7] सयणासणाणि[8], दासी दासं च[9] कुवियं च[10] ॥ ८२५ ॥
कोहो माणो माया, लोभो पेज्जं तहेव दोसो अ ।
मिच्छत्त वेद अरइ, रइ हास सोगो भय दुगंछा ॥ ८३१ ॥
सावज्जेण विमुक्का, सब्भिंतर बाहिरेण गंथेण ।
निग्गहपरमा य विदू, तेणेव होंति निग्गंथा ॥ ८३२ ॥
केई सव्वविमुक्का, कोहाईएहिं केई भइयव्वा ॥ ८३२ ॥

( श्री संघदासगणिक्षमाश्रमणकृत, बृहत्कल्पसूत्र भाष्य )

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं, द्विपदं च चतुष्पदं ।
हिरण्यं च सुवर्णं च, कुप्यं भाण्डं बहिर्दश ॥ १ ॥
मिथ्यात्ववेदौ हास्यादि-षट् कषाय चतुष्टयं ।
रागद्वेषौ च संगाःस्यु—रन्तरङ्गाः चतुर्दश ॥ २ ॥
कुप्यं—पींछी, रुमाल । भाण्ड–कमंडलु, पात्र ॥

( दर्शन प्राभृत गा० १४ टीका, भाव प्राभृत गा० ५६ टीका )

दिगम्बर--मुनि को उपाधि रखना चाहिये, मगर उसमें ऊनी रजोहरण और कमली नहीं रखना चाहिये ? क्योंकि ऊन अपवित्र वस्तु है यदि रजोहरण रखना अनिवार्य है तो मोर पीछ, गीधपीछ, बलाक पीछ या और कोई पीछ रखनी चाहिये ? क्योंकि ये पवित्र हैं।

जैन--चमड़ी केश नख पींछे ये सब एक से हैं, इनमें पवित्रता और अपवित्रता का भेद कैसे माना जाय ?

दिगम्बर--पीछें, कुदरतन मिलती हैं इनके पाने में मोर आदि की हिंसा नहीं होती है अतः पीछे पवित्र हैं। ऊन कतर के ली जाती है इसके पाने में भेड़ वगैरह की हिंसा होती है या वह मरे हुए भेड़ की मीलती है अतः ऊन अपवित्र है।

जैन--महानुभाव! पीछें खींचने से मोर को बड़ा कष्ट होता है वह मर भी जाता है, पीछें मुश्किल से आधाकर्मीक आदि दोष युक्त और मरे मोर के भी मिलते हैं, यह है आपकी पवित्र वस्तु। और जिस वस्तु के पाने में न भेड़ की हिंसा है न कष्ट है न आधाकर्मी पाप है और ऋतु आदि की अपेक्षा से जिसका काटना अनिवार्य एवं उपकार रूप माना जाता है, वह वस्तु है अपवित्र !

इस प्रकार मनमानी कल्पना से क्या कोई वस्तु पवित्र या अपवित्र बन सकती है !

यहाँ वस्तु स्थिति यही है कि दिगम्बर विद्वानों ने श्वेताम्बर मुनिभेष की निन्दा करने के लिये ऊनको अपवित्र लिख दिया है वास्तव में ऊन अपवित्र नहीं है लौकिक व्यवहारों में भी ऊनी सूती कपड़े की बनिस्पत अधिक पवित्र मानी जाती है।

दिगम्बर--जब मुनि वस्त्र रख सकते हैं तो उनको पात्र रखने में किसी प्रकार का विरोध नहीं होना चाहिये, कमण्डल

रक्खें या पात्र, वह एक सी बात है। एक नग्न के लिये उपयुक्त है, दूसरा वस्त्र वालों के लिये।

जैन---संभवतः कमण्डल रखना यह सन्यासियों का अनुकरण है। प्रति लेखना की अपेक्षा से तो पात्र रखना जैन मुनि के लिये अधिक उपयुक्त है इसके अलावा दिगम्बर शास्त्रों में पात्र के लिये तिरोहित विधान भी मिलता है। जैसे—

१—तव वाल वुड्ढ सुय आयरांहं 'दुब्बल तणुरोह दुहांयरांहं।

ओसह पय पच्छाय जोगु जासुं, दहविणु विज्जावच्चंगु तासु॥

किरंतो णिंदियो मुणिंदु। हुओ णंदिमितु नाम. जियणिंदु॥

( घत्ताबंध-हरिवंश पुराण )

माने-तपस्वी वाल वृद्ध श्रुतधर आचार्य दुर्बल और रोगी वगैरह की आहार पानी और औषधि आदि से वैयावृत्य करने का विधान है। जो पात्र रखने से ही साध्य है। सर्वथा शक्ति रहित और बीमार साधु की वैयावृत्य करने की शास्त्रों की आज्ञा है। वह उठ भी नहीं सकता है जब दूसरा मुनि पात्र द्वारा शुद्ध आहार पानी लाकर उसकी वैयावृत्य करे तब वह आहार पानी ले सकता है, इस हालत में वैयावृत्य की सफलता है एवं पात्र रखना ही अनिवार्य है।

२-मुनि आहार पानी से वैयावृत्य करे। ( पूजापाठ )

माने-मुनि पात्र के जरिये लाये हुए आहार पानी से आचार्य की भक्ति करे साधर्मिक ( मुनि ) की भक्ति करे।

३—रात्रौ ग्लानेन भूक्ते स्यादेकस्मिं श्च चतुर्विधे॥
उपवासः प्रदातव्यः षष्ठमेव यथा क्रमम्॥ ३३॥

टीका-रात्रौ निशि। ग्लानेन व्याधि विशेष परिश्रम विविधोपवासादि परिपीड़ितेन सता कर्मोदय वशात् प्राणसंकटे। भुक्तेऽ

भ्यव्यवहृते सति । स्यात् भवेत् । एकस्मिन् भुक्ते एकतराहारे भुक्ते सति । चतुर्विधे चतुष्प्रकारे अशने पाने खाद्ये स्वाद्ये च । उपवासः क्षमणं, प्रदातव्यः प्रदेयः षष्ठमत्र षष्ठं । यथाक्रमं यथासंख्यं एकास्मिन्नाहारे क्षमणं, चतुर्विधाहारे षष्ठ मिति ॥ ३३ ॥

( दिगम्बरीय प्रायश्चित्त चूलिका श्लो० ३३ )

यदि मुनि न वस्त्र रक्खे, न आहार पानी लावे, तो वह रात्रि भोजन और तज्जन्य प्रायश्चित्त का प्रसंग कैसे हो सकता है !

भूलना नहीं चाहिये कि-दिगम्बर शास्त्र में दिगम्बर मुनि के लिये ही यह प्रायश्चित बताया है ।

४-रत्ति गिलाणभत्ते, चउविह एकम्हि छट्ठखमणाओ
उवसग्गे सठाणं, चरियापविट्ठस्स मूलमिदी ॥ २६ ॥

टीका-रात्रौ व्याधियुते चतुर्विधाहारे षष्ठं । एक विधाहारे भुक्ते उपवासः । उपसर्गे रात्रिभोजी पंच कल्याणं । रात्रौ चर्याप्रविष्टः मूलं गच्छति । "न तस्य पंक्ति भोजनम्" । इतिषष्ठं व्रतम् ॥ २६॥

( छेद शास्त्र प्रायश्चित्त संग्रह )

माने-दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार उनके मुनि रात्रि भोजन का प्रायश्चित लेवे यह बात पात्र होने के पक्ष में जाती है । यहाँ उस मुनि के लिये "पंक्ति भोजन के त्याग रूप दंड" बताया है । इससे भी सिद्ध है कि श्रमण पात्र को रक्खे उनमें आहार पानी लावे और एक पंक्ति में बैठ कर आहार करें, दोषित साधु इस पंक्ति में बैठने का हकदार नहीं है । यह पंक्तिभोजन भी पात्र रखने के पक्ष में है ।

५--पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतम प्रतिसेवमानः पुलाको भवति । ( तत्वार्थसूत्र )

माने-रात्रि भोजी श्रमण पुलाक है । जैन निर्ग्रन्थ पात्र द्वारा

आहार पानी लाकर दिन दिन में ही आहार कर लेते हैं। मगर कोई मुनि उसको रखले और रात्रि भोजन करे तो वह पुलाक है।

६-मुनि रात को एक बार भोजन पान करे तो तीन उपवास अर्थात् तीन वार नमोकार मंत्र का जाप करना चाहिये।

( दिगम्बर चर्चा सागर पृ० ३२१ च० समीक्षा पृ० १२३)

भट्ट० इन्द्र नन्दी के नीतिसार श्लो० ४६ में भी रोगी साधु की परिचर्या करने का विधान है जो पात्र के जरिये साध्य हैं

सारांश-जैन निर्ग्रन्थ पात्र को रक्खें। जिनके जरिये वे आहार पानी ला सकते हैं और दूसरे मुनिओं की भक्ति भी कर सकते हैं। इत्यादि।

जिनागम में उल्लेख है कि-मुनि लोहार्यजी पात्र होने के कारण ही तीर्थंकर भगवान महवीर स्वामी की आहार पानी आदि से वैया वृत्य करते थे। ( आ० नि० गा०.........टीका )

दिगम्बर--मुनियों को दंड ( डंडा ) रखना उचित नहीं है, कभी वह अधिकरण भी बन जाता है।

जैन--ठीक बात है पाप श्रमण के पास उपकरण भी अधिकरण बन जाता है, ऐसी हालत में तो दंड ही क्यों पीछी कमण्डल, पुस्तक, रुमाल और शरीर, ये सब अधिकरण बन जाते हैं। मुनि कुस्ति लड़ें, कमंडल पीछी या पुस्तक से दूसरे को मारे, या पुस्तक के रुमाल से किसी को बांधे तो उसके लिये शरीरादि उपकरण अधिकरण ही बन जाते हैं, इसमें उपकरण का क्या दोष! इसमें तो मुनि ही दोषित हैं। जैनजगत और जैनमित्र की फाइलों में अनेक ऐसे समाचार छपे है कि जिनमें दिगम्बर मुनियों ने उपकरण को अधिकरण बनाया हो उसके प्रमाण हैं।

तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी फरमाते हैं कि-"

जे आसवा ते परिसवा जे परिसवा ते आसवा।"

जो आश्रव के हेतु हैं वे ही संवर के हेतु हैं जो संवर के हेतु हैं वे ही आश्रव के हेतु हैं। कैसा अच्छा खुलासा है ?

समय प्राभृत गा० २८३ में भी इसी का ही अनुकरण है।

इस अपेक्षा से दंड भी उपकारक उपकरण है और मुनि उसे आवश्यकता के अनुसार रखते हैं।

दिगम्बर---उपधि किसे मानी जाय ?

जैन---जिसके जरिये पांच महाव्रतों का निर्वाह, ज्ञानादिकी पुष्टि और समीति आदि का पालन अच्छी तरह होता है वह उपधि है, वही उपकारक परद्रव्य है। जिसके द्वारा उपरोक्त फल न हो, वह उपधि नहीं किन्तु उपाधि ही है।

दिगम्बर---उपधि से क्या लाभ है ?

जैन---जैन निर्गन्थों को उपधि द्वारा अनेक लाभ प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

१-नग्नता से धर्म की निन्दा होती है, धर्म प्रचार रुक जाता है, विहार में बाधा पड़ती है, राजा महाराजा विविध फरमान निकालते है, बच्चे डरते हैं, सभ्य समाज अपने घरमें नहीं आने देता है, अजैन का आहार पानी बंद हो जाता है, एक ही घर से गोचरी करनी पडती है, और जैन शासन को अनेकों विधि नुकसान होता है। सिर्फ दो चार हाथ का वस्त्र न होने से इतना नुकसान उठाना पडता है। एक दिगम्बर विद्वान ने ठीक ही कहा है।

अलस्य हेतोर्बहु नाश मिच्छन्। विचारमूढः प्रतिभाव्य से त्वम्॥

मुनि जैन धर्म को इस नाश में से चोल पटाके जरिये बचा । वस्त्रधारी मुनि सब स्थानों में जा सकता है। राजा के में भी सत्कार पूर्वक प्रवेश पा सकता है।

२—"मुहपत्ति" भाषा समिति के पालने में अनिवार्य उपाधि है।

३—पीछी और "रजोहरण ( ओघा )" यह जैन मुनि का लिंग है; अहिंसा का साधन है। आ० कुंद कुंद ने भी आकाश में जाते समय इस मुनिलींग ( वाना ) को ही प्रधान माना है।

४—"केसरिका" से यथार्थ प्रति लेखना होती है चारित्र प्राभृत गा० ३६ की टीका में इसी की ही स्वीकृति दी है।

५-जीवाकुल भूमि में जीवों की दया के निमित दंडासण रखना चाहिये जिससे ऊनकी फालियों का परिघ वनाया जाय तो भी दोनों पैर के लिये फासुक जगह मिल जाती है, रात्रिको देह चिंता के लिये जाने आने में दंडासण से ही इर्यासमिति पाली जाती है।

६-पात्र के अभाव में मुनि को एक स्थान से ही आहार लेना पडता है। जिसमें गोचरी की शुद्धी नहीं हो सकती है। गाय चरती है तब थोडा २ खाते २ आगे बढती जाती है कहीं एक स्थान से ही घास को समूल नष्ट नहीं कर देती है ऐसा करने से उसकी चरभूमि हरी भरी रहती है। इसका नाम है "गो-चरी"। भौंरा विभिन्न फूलों से अल्प अल्प रस को पीकर संतुष्ट रहता है। और ऐसा भी नहीं करता है जिससे फूलों को पीडा हो इस विधि का नाम है "भ्रामरी" यानी "मधुकरी"। गधा जहाँ चरता है वहाँ से घास बिलकुल खा जाता है यानि बिलकुल सफाचट कर देता है। इस विधि का नाम है "गधाचरी" मुनि को पात्र के अभाव में उपरोक्त कथनानुसार गोचरी और मधुकरी तो हो ही नहीं सकती है। एक स्थान पर अहार लेने से अल्प कौटुम्बिक को तो कभी दुबारा रसोई करनी पडती है, आधाकर्मिक औद्देशिकादि दोष भी लगते हैं, गुरुभक्ति साधर्मिक भक्ति या ग्लान वैयावृत्य को तिलांजली ही

जो आश्रव के हेतु हैं वे ही संवर के हेतु हैं जो संवर के हेतु हैं वे ही आश्रव के हेतु हैं। कैसा अच्छा खुलासा है?

समय प्राभृत गा० २८३ में भी इसी का ही अनुकरण है।

इस अपेक्षा से दंड भी उपकारक उपकरण है और मुनि उसे आवश्यकता के अनुसार रखते हैं।

दिगम्बर--उपधि किसे मानी जाय?

जैन--जिसके जरिये पांच महाव्रतों का निर्वाह, ज्ञानादिकी पुष्टि और समीति आदि का पालन अच्छी तरह होता है वह उपधि है, वही उपकारक परद्रव्य है। जिसके द्वारा उपरोक्त फल न हो, वह उपधि नहीं किन्तु उपाधि ही है।

दिगम्बर--उपधि से क्या लाभ है?

जैन--जैन निर्गन्थों को उपधि द्वारा अनेक लाभ प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

१-नग्नता से धर्म की निन्दा होती है, धर्म प्रचार रुक जाता है, विहार में बाधा पड़ती है, राजा महाराजा विविध फरमान निकालते है, बच्चे डरते हैं, सभ्य समाज अपने घरमें नहीं आने देता है, अजैन का आहार पानी बंद हो जाता है, एक ही घर से गोचरी करनी पडती है, और जैन शासन को अनेकों विधि नुकसान होता है। सिर्फ दो चार हाथ का वस्त्र न होने से इतना नुकसान उठाना पडता है। एक दिगम्बर विद्वान ने ठीक ही कहा है।

अल्पस्य हेतोर्बहु नाश मिच्छन्। विचारमूढः प्रतिभास्य से त्वम्॥

मुनि जैन धर्म को इस नाश में से चोल पटाके जरिये बचा लेता है। वस्त्रधारी मुनि सब स्थानों में जा सकता है। राजा के अंतःपुर में भी सत्कार पूर्वक प्रवेश पा सकता है।

२—"मुहपत्ति" भाषा समिति के पालने में अनिवार्य उपाधि है।

३--पीछी और "रजोहरण ( ओघा )" यह जैन मुनि का लिंग है; अहिंसा का साधन है। आ० कुंद कुंद ने भी आकाश में जाते समय इस मुनिलींग ( वाना ) को ही प्रधान माना है।

४—"केसरिका" से यथार्थ प्रति लेखना होती है चारित्र प्राभृत गा० ३६ की टीका में इसी की ही स्वीकृति दी है।

५-जीवाकुल भूमि में जीवों की दया के निमित दंडासण रखना चाहिये जिससे ऊनकी फालियों का परिघ बनाया जाय तो भी दोनों पैर के लिये फासुक जगह मिल जाती है, रात्रिको देह चिंता के लिये जाने आने में दंडासण से ही इर्यासमिति पाली जाती है।

६-पात्र के अभाव में मुनि को एक स्थान से ही आहार लेना पडता है। जिसमें गोचरी की शुद्धी नहीं हो सकती है। गाय चरती है तब थोडा २ खाते २ आगे वढती जाती है कहीं एक स्थान से ही घास को समूल नष्ट नहीं कर देती है ऐसा करने से उसकी चरभूमि हरी भरी रहती है। इसका नाम है "गो-चरी"। भौंरा विभिन्न फूलों से अल्प अल्प रस को पीकर संतुष्ट रहता है। और ऐसा भी नहीं करता है जिससें फूलों को पीडा हो इस विधि का नाम है "भ्रामरी" यानी "मधुकरी"। गधा जहाँ चरता है वहाँ से घास बिलकुल खा जाता है यानि बिलकुल सफाचट कर देता है। इस विधि का नाम है "गधाचरी" मुनि को पात्र के अभाव में उपरोक्त कथनानुसार गोचरी और मधुकरी तो हो ही नहीं सकती है। एक स्थान पर अहार लेने से अल्प कौटुम्बिक को तो कभी दुवारा रसोई करनी पडती है, आधाकर्मिक औद्देशिकादि दोष भी लगते हैं, गुरुभक्ति साधर्मिक भक्ति या ग्लान वैयावृत्य को तिलांजली ही

देनी पड़ती है, गुरु को बताने का और गुरु की आज्ञानुसार या गुरुदत्त आहार पाने का लाभ नहीं मिलता है और गुरु को विना दिखाये आहार लेते २ क्वचित् स्वच्छंन्दता का भी अवकाश मिलता है। पात्र के अभाव में बीमार या बूढ़ा मुनि तो भूखा ही मरे क्योंकि उसके लिये गृहस्थ ला नहीं सकता है, साधु लाकर देता नहीं है, इस हालत में जैन धर्म की निन्दा होती है।

मान लिया जाय कि इस हालत में मुनि मरे तो देव बनेगा परन्तु यह तो केवल कल्पना मात्र ही है। यदि वह आर्तध्यान में हो तो क्या होगा? मान लो देव बने तो भी क्या लाभ? सटीक पंचास्तिकाय गा० ३० में इस प्रवृत्ति को अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग मानकर निषिद्ध बताई है। दिगम्बर शासन में इस प्रकार की अग्राह्य प्रवृत्ति यानि अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग की प्रधानता होने के कारण ही भट्टारक बने हैं और शास्त्री बढ़े हैं।

पात्र रखने से मुनि को उपरोक्त दोषों से बचाव होता है। आहार लाकर और गुरु को बताकर खाने से शिथिलता या स्वच्छंदता नहीं आती है। दिगम्बर मुनि कमण्डल रखते हैं मगर उसमें प्रति लेखना करना दुःसाध्य है छिद्र होता है उसकी प्रतिलेखना में भी मुश्किल होती है।

७—आसन और शय्या होय तो वहाँ त्रसजीव एकदम नहीं आ सकता है। और यदि आजाय तो उसको त्रास न हो वैसे दूर हटाया जा सकता है।

८—चातुर्मास में जीवोत्पत्ति बहुत होती है, उनके रक्षण हेतु पाटा आदि का चौमासा में इस्तेमाल करना आवश्यक है।

९—जैन मुनि को पानी की गहराई देखकर नदी पार करने की आज्ञा तो है ही, मगर पानी कितना है यह कैसे जाना

जाय ? इस उपस्थिति में देह प्रमाण लम्बा डंडा ही उपकारक है। मुनि को बिना गहराई देखे नदी में उतरना मना है। इसके अलावा डांडा की स्थापना होती है, विहार में मुनि का काल धर्म हो जाय तो दूसरे मुनि उसको डंडा की जोली में उठा सकते हैं, बीमार मुनि भी डंडा के जरिये उठाया जाता है, स्थवीर मुनि डंडा के सहारे विहार कर सकता है। * डंडा रखना भी आवश्यक है।

सारांश—मुनि चारित्र पालन के लिये वस्त्र, पात्र वगैरह उपकरण को रखते हैं, वैसे ही डंडा को रखते हैं।

इसके अलावा और भी जो २ उपधि हैं वे सब किसी न किसी अंश में लाभकारी ही है। उपधि के द्वारा विशेष शुद्ध चारित्र पालन होता है।

दिगम्बर—विचार पूर्वक अगर देखा जाय तो यह सब बातें सत्य सी प्रतीत होती हैं। फिर भी दिगम्बर आचार्य नग्नता पर ही क्यों जोर देते हैं ?

जैन—नग्नता व पीछी आदि किसी भी द्रव्य लिंग पर एकान्त जोर देना वह परमार्थः नुकसान कारक ही है। और उनसे ही मोक्ष प्राप्ति मानना वह एकान्तिक कल्पना है सरासरी गलती है। इस सत्य को दिगम्बर आचार्य इस रूप में स्पष्ट करते हैं।

भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ॥
भावो कारण भूदो, गुण दोसाणं जिणा विंति ॥ २ ॥

गुण दोष का कारण भाव लिंग ही है, उससे द्रव्यलिंग का कोई सम्बन्ध नहीं है।

---

* स्थानक मार्गी मुनि रंग धारी धारीदार और मोटक छड़ी रखते हैं। यह अनुचित है क्योंकि ऐसी ही लकड़ी रखनी चाहिये जो उपरोक्त कार्य्य में सहायक हो। जैन मुनि के डंडे पर ५ समिति वगैरह का निशान रहता है।

भावेण होइ लिंगी, णहु लिंगी होइ दव्वमित्तेण ।
तम्हा कुणिज्ज भावं, किं किरइ दव्वलिंगेण ॥४८॥

माने-द्रव्यलिंग, नग्नता से कुछ नहीं होता है।

भावेण होइ णग्गो, बाहिर लिङ्गेण किं च णग्गेण ।
कम्म पयडीय नियरं, णासेइ भावेण ण दव्वेण ॥ ५४ ॥

निर्मम बनो ? नंगा होने से क्या ? नंगा हो जाने से कर्म का विनाश नहीं होता है।

णग्गत्तणं अकज्जं, भावेण रहियं जिणेहिं पन्नत्तं ।
इय नाऊणय णिच्चं, भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥ ५५ ॥
देहादिसंग रहिओ, माण कसाएहिं सयल परिचित्तो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ, स भावलिंगी हवे साहू ॥ ५६ ॥

देह वस्त्रादि में निर्मम और निष्कषाय मुनि भाव लिंगी है।

ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्ति मुवादिट्ठो ॥ ५७ ॥
भावो कारणभूदो, सायाराऽणयार भूदाणं ॥ ६६ ॥
णग्गो पावई दुक्खं, णग्गो संसार सायरे भमई ।
णग्गो ण लहइ बोहीं, जिण भावेण वज्जिओ सुइरं ॥६८॥

नग्नता मोक्ष का कारण नहीं है।

भाव सहिदो मुणिणो, पावइ आराहणा चउक्कं च ।
भाव रहिदो य मुनिवर, भमइ चीरं दीह संसारे ॥६६॥

नंगा संसार में भटकता है।

सेवहि चउविहलिंगं, अब्भिंतरलिंग सुद्धिमावण्णो ।
बाहिरलिंगमकज्जं होई फुडं भावरहियाणं ॥ १०६ ॥
भाव समणो वि पावइ, सुक्खाइं दुहाइं दव्व समणो य ।
इइ णाउं गुण दोसे, भावेण संजुदो होइ ॥ १२७ ॥

मूर्च्छा रहित—भाव साधु सुखी होता है और नंगा—द्रव्य-साधु दुखी होता है। अतः भाव साधु ही बनना चाहिये।

( आ० कुन्द कुन्द कृत भाव प्राभृत )

धम्मेण होइ लिंगं, ण लिंगमित्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहिं भाव धम्मं, किं ते लिंगेण कायव्वो ॥ २ ॥

नंगा हो जाने से साधुता नहीं आती है। अतः द्रव्यलिंग किसी काम का नहीं है। कार्य साधना में भाव साधुता माने निर्ममत्वा दि भाव लिंग की ही प्रधानता है।

( आ० कुन्द कुन्द कृत लिंग प्राभृत )

निश्चयनय मोक्ष मार्ग में द्रव्यलिंग को निठल्ला मानता है

( समय प्राभृत ४४४ )

त्यक्तैव बहिरात्मानं ॥ २७ ॥

मोक्ष मार्ग में बहिरात्मा की चर्चा ही त्याज्य है।

परत्राहं मतिः स्वस्मात् च्युतो बध्नात्यसंशयम् ॥ ४३ ॥

मेरा शरीर, मेरा वस्त्र यह विचारना ही आत्मा को बन्धन कारक है, उनके होने पर भी उन्हें अपना नहीं मानना चाहिये।

शरीरे वाचि चात्मानं ॥ ५४ ॥

शरीर को आत्मा मानना, यह अज्ञानता है शरीर जीव से भिन्न ही है, अतः शरीर सवस्त्र हो या अवस्त्र हो, मगर वह आत्मा की मोक्ष को नहीं रोक सकता है।

जीर्णे स्वदेहे ऽप्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

इस श्लोक के आशय को लेकर ऐसा श्लोक भी बन सकता है कि—

सवस्त्रे देहे ऽप्यात्मानं, न स-वस्त्रं वदेत् बुधः ॥

शरीर वस्त्र वाला होता है। आत्मा से वस्त्र का क्या सम्बन्ध है? वह तो नग्न ही है।

नयत्या त्मान मात्मैव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥

आत्मा ही आत्मा को संसार में फिराता है और मोक्ष में ले जाता है माने—"नग्नत्व से मोक्ष है" यह बात कहने मात्र है।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो भवः ॥
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिंग कृताग्रहाः ॥ ८७ ॥
जातिर्देहाश्रिता दृष्टा ॥ ८८ ॥

ब्राह्मण पुरुष या नंगा ही मोक्ष में जा सकता है। इत्यादि लिंग के आग्रह से संसार बढ़ता है॥

जाति लिंग विकल्पेन, येषां च समयाग्रहः ॥
ते न आप्नुवन्त्येव, परमं पदमात्मानः ॥ ८९ ॥

मैं ब्राह्मण हूँ मैं नग्न साधु हूँ ऐसा आग्रह ही मोक्ष का बाधक है

(आ पूज्यपाद कृत समाधि शतक)

संघो को वि न तारइ, कट्ठो मूलो तहेव निपिच्छो।
अप्पा तारइ तम्हा, अप्पा ओ झायव्वो ॥

(आ० अमृत चन्द्र कृत श्रावकाचार)

पिच्छे ण हु सम्मत्तं, करगहिए चमर मोरडंबरओ
समभावे जिणदिट्ठं, रागाइ दोस चत्तेण ॥ २८ ॥

(ढाढसी)

केकीपिच्छः श्वेतवासो, द्रावीड़ो यापनीयकः।
निष्पिच्छश्चेति पंचैते, जैनाभासाः प्रकीर्तिताः॥

(दि० आ० इन्द्र नन्दी कृत नीतिसार श्लो० १०)

देह एव भवो जन्तोर्यल्लिगं च तदाश्रितम्;
जातिवत्तद् गृहं तत्र, त्यत्वा स्वात्म ग्रहं वशेत् ॥ ३६ ॥

शरीर ही संसार है, लिंग उसके अधीन है, जाति के समान पराश्रित है, अतः नग्नतादि लिंग का आग्रह नहीं रखना चाहिये।

( पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृत )

जो घर त्यागी कहावे जोगी, घरवासी कहँ कहें जूँ भोगी
अंतर भाव न परखे जोई, गोरख बोले मूरख सोई

( बनारसी विलास पृ० २९९ )

सारांश-ऊपर के सब प्रमाणों से निश्चित ही है कि अनेकान्त जैन दर्शन को नग्नता या वस्त्र से कोई वास्ता नहीं है। जैन मुनि नंगा हो या वस्त्रधारक हो, किन्तु वह भाव साधु माने मूर्च्छा रहित अवश्य होना चाहिये, वही मोक्ष का अधिकारी है।



# मुनि आचार–अधिकार

दिगम्बर—श्वेताम्बर आगम में जिक्र है कि गणधर गौतम स्वामी ने स्कंदक परिव्राजक का सत्कार किया था यह क्या ?

जैन—महापुरुष द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को सोचकर अपनी प्रवृति करते हैं। आ० कुन्द कुन्द ही प्रवचनसार में-"समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २१ ॥ देसं कालं जाणित्ता ॥ ३० ॥ इत्यादि आज्ञा देते हैं।

दिगम्बर शास्त्रों में दृष्टान्त भी मिलते हैं कि—

भ० श्री ऋषभदेवजी ने भरत चक्रवर्ती को स्वप्न का फल कहा, मरिचि का भाविष्य कहा, भ० श्री नेमिनाथ जी ने बलभद्र जी को द्वारिका भंग का निमित्त बताया, आ० कुन्द कुन्द के शिष्यों ने रात होने पर भी देवो से वार्तालाप किया, इत्यादि।

इसी प्रकार श्री गौतम स्वामी ने भी लाभा लाभ को सोच कर ऐसा किया है। वस्तुतः परम ज्ञानियों की प्रवृत्ति फल प्रधान होती है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर शास्त्र में उल्लेख है कि भगवान मुनि सुव्रत स्वामी ने घोड़े को गणधर बनाया था।

जैन—यह झूठी बात है, श्वेताम्बर में ऐसा नहीं लिखा है। हां भ० ने घोडा को सर्व समक्ष प्रति बोध दिया था, मगर उनके गणधर तो "मल्लीकुमार" वगैरह ही थे।

दिगम्बर—दिगम्बर मुनि एक ही घर से पर्याप्त आहार लेते हैं, ऐसा सब मुनियों को करना चाहिये।

जैन—यदि "गोचरी" ही करना है तो जैन मुनि के लिये एक ही घरका एकान्त विधान नहीं होना चाहिये। एक घर के

आहार विधि में आधाकर्मी आदि अनेक दोष लगते हैं, जिनका विस्तृत खुलासा पात्र की चर्चा में किया गया है, वहां से समझ लेना चाहिये।

दिगम्बर—जैनेतर के घरका आहार पानी नहीं लेना चाहिये ! कारण ? वे पानी को छानते नहीं हैं, और विना स्नान कराये ही गाय भैंस का दुध निकाल लेते हैं। ये पानी और दुध जैन मुनि के लीये अकल्प्य हैं।

जैन—भगवान् श्री ऋषभदेवजी ने जैनेतरो के घरका आहार पानी लीया है; चौथे आरे के वीच २ में जैन धर्म का लोप हो गया था, जब भ० श्रीशीतलनाथजी वगैरह ने भी जैनेतरो से आहार पानी लीया है। इस हिसाब से तो जैन मुनि को जैनेतर का आहार पानी कल्प्य है। मगर दिगम्बर मुनिजी उनसे आहार पानी लेते नहीं है, कारण ? जैनेतर लोग नग्न को अपने घर में लाने को हीचकते हैं एवं आहार पानी देने में भी घृणा करते हैं, और इस हालत में दि० मुनि भी उनके घर जाते नहीं है। कुछ भी हो, जैन मुनि विवेकी अजैनो से आहार पानी ले सकते हैं।

दिगम्बर—जैन मुनि को शूद्र का आहार पानी नहीं लेना चाहिये।

जैन—दिगम्बर पं० आशाधरजी श्रावकाचार में लीखते हैं कि—जाति हीन भी काल आदि के निमित्त से धर्म बन सकता है। वैसे शूद्र भी उपस्कार से शुद्ध हो सकता है, इत्यादि।

इस प्रकार दिगम्बर समाज में शूद्र की शुद्धि मानी जाति है फिर दिगम्बर मुनि को उसके आहार पानी लेने में हरजा भी क्या है ? मगर आज तो वे जैनेतरो का भी आहार पानी नहीं लेते हैं फिर उस शूद्र का कैसे ले सके ?

दिगम्बर मुनिजी शूद्र को अपना शिष्य बना लेवे जैन मुनि बना लेवे, फिर उसके आहार पानी का निषेध कैसा ?

दिगम्बर—हमारे मुनि हमारे लिये भी शूद्र का पानी त्याज्य बताते हैं।

जैन—आप शूद्र के हाथ का सिर्फ पानी नहीं पीते हो परन्तु उनके हाथ का और उनके पानी से धुले हुए एवं संसर्गित शाक, फल, फूल घी दूध इत्यादि को खाते हो शूद्र की मिठाई तक खाते हो उन्हीं चीजों का आहार मुनिको देते हो, तिर्यञ्च भैंस वगैरह को स्नान से पवित्र बना कर उसका दूध भी मुनि को देते हो और आपके आचार शूद्र भी मुनि को आहार देते हैं। फिर भी आप पानी त्याग की बातें बनाते हो यह कहाँ तक ठीक है ? इतना ही क्यों ? शूद्र तुम्हारे मुनि जी बन सकते हैं। इस हालत में शूद्र के पानी का एकान्त निषेध करना, यह अनुचित आज्ञा है

यहां इतना ही पर्याप्त है कि जैन मुनि आचार शूद्र के घर का आहार पानी ग्रहण नहीं करें, यही न्याय मार्ग है यही स्याद्वाद वचन है।

दिगम्बर—जैन मुनि खड़े खड़े आहार पानी करे

जैन—खडे और लब्धिरहित करभोजी के हाथ से खुराक के अंश गिरते हैं, इससे जीव विराधना और निन्दा होती है। गृहस्थ उन्हे उठाते हैं जिसमें पारिष्ठापनिका समीति का विनाश होता है। खडे २ या चलते चलते खाना पीना तो व्यवहार से भी उचित नहीं है। इसमें आसन सिद्धि नहीं हैं। एकासन द्विआसन आदि व्रत प्रत्याख्यान भी नहीं हो सकते हैं। अतः मुनि पात्र के जरिये शुद्ध स्थान में स्थिर बैठ कर आहार पानी करे, यही प्रसंस-नीय मार्ग है।

दिगम्बर—जैन मुनि जी को महाव्रतों से भिन्न प्रत्याख्यान नहीं होता है। हमारे छै आवश्यक में भी प्रत्याख्यान नहीं माना है। कि जैसा श्वेताम्बर में माना जाता है। देखो—

सामायिक, स्तुति, वंदनक, प्रतिक्रमण, वैनयिक और कृति कर्म इत्यादि।

( शुभचन्द्र की अंग पन्नति, पंचास्तिकाय भाषा टीका, ब्रह्म हेमचन्द्र कृत सुभसंधो गा० ६१, ६२, हरिवंश पुराण सर्ग १० )

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदनक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और स्वाध्याय।

( सोम सेन कृत त्रिवर्णाचार अ० १२ श्लो० १६ )

जैन—महानुभाव! अवद्धिक मत के सहकार से दिगम्बर समाज ने उसे उड़ाया है। आवश्यक भाष्य का प्रत्याख्यान अधिकार, पंचाशक, और पंच वस्तु वगैरह में, इस विषय की विशद विचारणा है। अवश्यक छै हैं, १-सामायिक, २-चतुर्विंशतिस्तव, ३-वंदनक, ४ प्रतिक्रमण, ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान।

दिगम्बर विद्वानों में छुटे आवश्यक के लिये मतभेद है जैसा कि आपने बताया है।

प्रत्याख्यान को उड़ाने से यह मतभेद खड़ा हुआ है मगर आ० वट्ट केर तो "मूलाचार" में छै आवश्यक बताते हैं जिन के प्रत्याख्यान आवश्यक में एकासन, आचाम्ल, चौथ भक्त, छठ, इत्यादि प्रत्याख्यान लिये जाते हैं।

दिगम्बर—मुनि एक दफे आहार करे।

जैन—आपको जैन तपस्या की परिभाषा के खोलने से ही इस मान्यता का उत्तर मिल जायगा।

दिगम्बर—जैन श्रमण के तप की परिभाषा जिस्न है

खमणं छट्ठ-ट्ठम-दसमखमणं खमणं च छट्ठ अट्ठमगं,
खमणं खमणं खमणं, छट्ठंच गदोस्सिमो छेदो ॥७८
( आ० इन्द्रनन्दी कृत—छेदपिण्ड गा० ७४ )

आद्यश्चतुर्दश दिनैर्विनिवृत्तयोगः।
षष्ठेन निष्ठित कृति जिन वर्धमानः॥
शेषा विधूतघन कर्म्म निबद्ध पाशाः।
मासेन ते यति वरास्त्व भवन् वियोगाः॥ २६ ॥
( समाधि भक्ति श्लो० २१ ॥ )

माने छट्ठ, अष्टम, दशमभक्त इत्यादि तप परिभाषा है, इनका अर्थ होता है २ उपवास ३ उपवास ४ उपवास व्रत इत्यादि। यहां उपवास के दिनों की दो २ खुराक और अंतरपारणा ( धारणा ) तथा पारणा के एक एक दिन की एकेकवार की २ खुराक का त्याग होता है, इस हिसाब से "दो उपवास वगैरह में छै खुराक के त्याग रूप छट्ठ" इत्यादि संज्ञा दी जाती है। वास्तव में प्रति दिन दो २ दफे खुराक लेना माना जाता है, उनकी मयसंख्या प्रतिज्ञा छट्ठ आदि शब्दो से होती है

जैन—आप मुनि की तपस्या में प्रति दिन दो २ खुराक का हिसाब लगाते हैं, तब तो ठीक है कि मुनि उत्सर्ग से दो दफे आहार करें और उनके त्याग में चतुर्थ भक्त छट्ठभक्त आदि प्रतिज्ञा भी करें। इस विधान से एक दफे ही आहार बताना वह एकान्त वचन हो जाता है। इसके अलावा तपस्वी आदि के लिये तो विशेष आजादी है, वे अधिक लाभ के निमित्त विशेष दफे आहार लें तो भी अनुचित नहीं है।

दिगम्बर—मुनि आहार औषध या भेषज में मांस वगैरह को ग्रहण न करे।

जैन—वास्तविक मार्ग यही है, और मुनि मांस लेते भी नहीं हैं। किन्तु भूलना नहीं चाहिये कि—जैन दर्शन में उत्सर्ग और अपवाद से सापेक्ष वस्तुनिरूपण है। दि० शास्त्र भी बताते हैं कि देशकालज्ञ स्यापि बाल वृद्ध श्रान्त ग्लान त्वानुरोधेनाऽहार विहारयो, रल्प लेप भयेनाऽप्रवर्तमानस्याऽतिकर्कशा चरणीभूय क्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांत समस्त संयमाऽमृत भारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्य प्रतिकारो महान् लेपो भवति तन्न श्रेयान् अपवाद निरपेक्षः उत्सर्गः ॥ सर्वथानुगम्यस्य परस्पर सापेक्षोत्सर्गापवाद विजृंभितवृत्तिः स्याद्वादः ॥ ३० ॥

( प्रवचन सार गाथा ३० टीका )

मानें उत्सर्ग और अपवाद को ख्याल में रख कर प्रवृत्ति करना, यही शुद्ध जैन दर्शन है, यही शुद्ध मुनि मार्ग है।

दिगम्बर—समकित्वी को अष्ट मूल गुण में ही मांस का त्याग हो जाता है।

जैन—अष्ट मूल गुण की दिगम्बरीय कल्पना ही नवीन है अतः इस विषय में दि० आचार्यों का बड़ा मत भेद है। देखिये।

१—तत्रादौ श्रद्दधेज्जैनीं, माज्ञां हिंसाम पासितुम् ।
मद्य मांस मधुन्युज्झेत्, पंचक्षीरिफलानि च ॥ २ ॥
अष्टैतान् गृहिणां मूलगुणान् स्थूल वधादि वा ।
फलस्थाने स्मरेद् द्युतं, मधुस्थाने इहैव वा ॥ ३ ॥

( पं० आशाधरकृत सागार धर्मामृत अ० २ )

२—३ स्वामि समन्तभद्रमते—५ फल स्थाने ५ स्थूल वधादि, महापुराण मते—५ स्थूलवधादि मद्यमांस और मधु के बजाय द्युत।

( पं० आशाधर कृत श्रा० टी० सं० १११९ )

४ मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहु गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥

(रत्नकरंडक श्रावकाचार, श्लोक ६६)

५ हिंसासत्यस्तेयाद् ब्रह्म परिग्रहाच्चबादरभेदात्
द्युतान्मांसान्मद्यात् विरतिर्गृहिणोष्ट सन्त्यमी मूल गुणाः ॥

(महापुराण)

६ मद्यमांस मधुत्यागैः सहोदुम्बर पंचकैः ।
अष्टावेते गृहस्थानां, उक्ता मूलगुणा श्रुते ॥

(आ० सोमदेव कृत चम्पू)

७ कल्याण आलोचना में ८ मूल गुण के स्थान पर ७ कुव्यसन ही लिये हैं (श्लो० १२)

पं० जुगलकिशोर मुख्तारजी ने जैनाचार्यों के शासन भेद में इस विषय पर विशद चर्चा की है । आ० कुन्द कुन्द व आ० उमास्वाति जी तो अष्ट मूल गुण का नाम भी नहीं देते हैं, महापुराण व रत्नकरंड के रचयिता इन गुणों को विरति भाव में शामिल करते हैं। और आ० सोमदेव वगैरह सम्यक्त्व में दाखिल करते हैं । कितना विसंवाद ?

इनमें से किसी गुण का धारक देशविरति वन जाता है तो ८ गुण के धारक को अविरति मानना आश्चर्य के सिवाय और क्या है ? हरिवंश पुराण में जैन दि० राजा सुदास के मांसाहार का जिक्र है यह भी अष्ट मूल गुण की मान्यता के खिलाफ प्रमाण है। आदि बातों से पता लगता है कि दिगम्बर अष्ट मूल गुण की मान्यता असली नहीं है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर शास्त्र यादवों को भी मांसाहारी बताते हैं ।

श्वेताम्बर–ठीक है, जो अविरति या अजैन होंगे वे मांसाहारी होंगे इसमें आश्चर्य क्या है? आज भी अविरति जैन या अजैन अग्रवाला अभक्षभक्षी हैं, माने कंद मूल भक्षी है, विदल भक्षी है वैसे ही उन यादवों के लिये समझना चाहिये।

दिगम्बरी राजा सुदास का मनुष्य मांस-भक्षण भी ऐसा ही विचित्र दृष्टान्त है। इसके अलावा त्रिवर्णा चार पृ० २७२ श्लो० ८२ में मांसाहार का जिक्र है जिसमें पांच पल भक्षण तक का कोई दंड नहीं है, यह सब दिगम्बर मांसाहार का विधान है।

दिगम्बर संघ के आद्य आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी के लीये भी कुछ ऐसी ही विचित्र घटना है।

दिगम्बरी जैन हितैषी भा० ५ अ० ६ पृ० १७ में "धर्म का अनुचित पक्षपात" लेख छपा है। उसमें वि० सं० १६३६ में दि० काष्टा संघी आ० "भूषण" लिखित दिगम्बरीय "मूल संघ का कुछ इतिहास" दिया है, जिसका सारांश यह है "एक बार काष्टासंघी अनंतकीर्ति नाम के आचार्य गिरिनार यात्रार्थ गये, वहाँ उन्होंने पद्म नन्दी (कुन्द कुन्द स्वामी) आदि निर्दयी पापी कापालिकों को देखा, और उन्हें संबोध श्रावक के व्रत दिये। आचार्य ने उसका (कुंद कुंद स्वामी का) नाम "मयुरशृंगी" रक्खा, बाद को उसने मंत्र वाद से "नंदीसंघ" चलाया और अपना 'पद्मनन्दी' नाम प्रसिद्ध किया। एक समय उज्जैन में उसने गुरु से विवाद किया और पत्थर की शारदा को बलात् बुलवा दिया। तब उसका बलात्कार गण और सरस्वती गच्छ प्रसिद्ध हुआ। आदि.......... बाद में उसने मंत्र सिद्धि के निमित्त एक मयूर को मार डाला, तब मयूर मर कर व्यंतरदेव हुआ। उसने बहुत उपद्रव मचाया तथा त्रासदिया, अन्त में उसके कहने से 'मयूर-पिच्छ' धारण कर पिंड छुडाया, उसदिन से मूल संघ का नाम 'मयूर संघ' हुआ

( जैन दर्शन व० ४ अं० ७ पृ० ३२० )

दिगम्बर—जैनमुनि रातको पानी न रक्खे।

जैन—जैन मुनि पीने के निमित पानी न रक्खे, किन्तु शौच के निमित्त चूना आदि से विकृत करके प्राशुक पानी रक्खे। दिगम्बर शास्त्र तो अशुचि होने पर स्नान तक का भी विधान करते हैं ( देखो, षटप्राभृत पृष्ठ—३७३ ) अतः शौच के निमित्त पानी रखना अनिवार्य है।

दिगम्बर—मुनि को वेदोदय हो तो श्रावक उनको जनाना समर्पित करके संतुष्ट करे, स्थिर करे। ऐसा श्वेताम्बर शास्त्र में विधान है।

जैन—महानुभाव ? यह तो किसी दिगम्बर विद्वान ने श्वेताम्बर मुनियों को बदनाम करने के लिये ऐसा लिख दिया है, मैं मानता हूं कि दिगम्बर के श्रावकव्रत में काफी गड़बड़ है।

देखियेः—

१—परविवाह करणेत्वारिका परिग्राहिता अपरिगृहितागमनानंगक्रीडा तीव्रकामाभिनिवेशः

( श्री तत्वार्थ सूत्र अ० ७ सूत्र २८ )

२—परविवाह०-ताभ्यां सरागवागादि वपुस्पर्शोऽथवा रतम् हास्य आलिंगन भोग दोषो ऽतिचारसंज्ञोपि ब्रह्मचर्य हानये।

( कवि राजमल्ल कृत लाटीसंहिता )

३-परविवाहकरणं इत्वरिका अपरिगृहितागमन इत्वरिका परिगृहितागमन अनंगक्रीडा तीव्रकामाभिनिवेशश्च॥ अपरि ग्रहीता तस्यां गमनम् आसेवनम्।

( चामुंडराय, चारित्र सार )

४-परविवाह करणानंगक्रीडास्मरागसां॥

परिगृहितेत्वारिका गमनं सेतरं मलाः॥ ७१॥

( पं० मेघावी कृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार अधि० ६ )

५ अन्यविवाहकरणा नंगक्रीडा "विटत्व" -विपुलतृषाः
इत्वरिका गमनं च स्मरस्य पंच व्यतिचाराः ॥

( रत्न करंड श्रावकाचार श्लो० ६० )-

६—इत्वरिकागमनं. परविवाहकरणं विटत्वमतिचाराः
स्मरतीव्राऽभिनिवेशो,ऽनंगक्रीड़ा च पंच तुर्ययमे ॥ ५७ ॥

"गमनम् आसेवनम्" ॥ इत्वारिकागमनादयः पंचातिचारा स्तुर्ययमे सार्वकालिक ब्रह्मचर्याणुव्रते भवन्तीति सम्बन्धः ॥

( पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृत अ० ४ )

७ परस्त्रीसंगमा नंगक्रीडा न्योपम सक्रीया ।
तीव्रता रतिकैतव्ये, हन्युरेतानि सद्व्रतम् ॥
वधूवित्त स्त्रियौ मुक्त्वा, सर्वत्रान्यत्र तज्जने ।
माता स्वसा तनूजेति, मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥

( पं० सोमदेवसूरिकृत, यशस्तिलक चम्पू )

८ इन अतिचारों के लिये आ० अमितगति स्वामी कार्तिकेय और भट्टाकलंक वगैरह के भिन्न २ मत है तथा तत्वार्थजी के टीका कार आ० पूज्यपाद आ० अकलंक आ० विद्यानंदी और श्वेताम्बर आचार्य यहां गमन के विषय में मौन हैं।

( दिगम्बर पं० बलभद्र न्यायतीर्थ का- इत्वारिका परिगृहिताऽ परिगृहितागमन लेख, जैन दर्शन व० ५ अं० ५ पृ० १६६, १६६ )

६—परयोनिगतो विंदुः कोटि पूजां विनश्यति ।—
यावद्वीर्य स्खलनं न भवति तावद् ब्रह्मचारीतिश्रुतिः

(पं० चम्पालाल पांडे कृत चर्चा सागर पृ० २७० समीक्षा पृ० २०५)

दिगम्बर शास्त्र कन्यादान को धर्म रूप मानते हैं—और संतुष्ट

तथा स्थिर कराने का हेतु रूप भी मानते हैं जैसे—

१—श्रावक साधार्मिक गृहस्थ आचार्य या मध्यम पात्र को कन्यादान करे। कन्या की स्वीकृति तीनों वर्ग की साधना के हेतु रूप है। इस दान का फल दर्शन की स्थिरता है। और चारित्र मोहनीय का उपशम है। पिता साधार्मिक बन्धु को कन्या देता है और दामाद को परिपक्व विषय फल भोग को प्राप्त कराकर उसके द्वारा चारित्र मोहोदय को शान्तकराकर विषय त्याग के योग्य बनाता है माने कन्यादान धर्म का अंग है।

( पं० आशाधर कृत श्रावका चार )

२—A कन्यादानं न देयं

B वारिषेण ने अपनी स्त्री का दान करके साधार्मिक को स्थिर किया। ( सकलकीर्ति कृत श्रावकाचार )

३--ऋतुवंती पत्नी को चौथी रातको अवश्य ही भोगना चाहिये ॥ २७१ ॥

( पं० मेधाविकृत धर्म संग्रह श्रावका चार श्लो० २७१ )

४—शुद्ध श्रावक पुत्राय, धर्मिष्ठाय दारिद्रिणे।

कन्यादानं प्रदातव्यं, धर्म संस्थाति हेतवे ॥ १२७ ॥
विना भार्यां तदाचारो, न भवेद् गृहमेधिनां।
दान पूजादिकं कार्य-मग्रे संतति संभवः ॥ १२८ ॥
श्रावका चार निष्ठोपि, दरिद्री कर्म योगतः।
सुवर्णदान माख्यातं, तस्मै आचार हेतवे ॥ १२९ ॥
गृहदानं ॥ १३० ॥ रथादि दानं ॥ १३१ से १३६ ॥
(दि० भट्टा० सोमसेनकृत, त्रिवर्णाचार अ० ६ सं० १६६५)
रतिकाल योनिपूजादि ॥ ३८ से ४५ ॥

( दि० आ० सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार अ० ६ )

५—जैन राजा सुमित्र ने स्वयं अपनी रानी को कहा कि वह जाकर, उसके एक मित्र की काम वासना की तृप्ति करे, साथ ही न जाने पर उसे दंड देने की धमकी भी दी गई।

( पद्म पुराण स० १२ प्रत्युत्तर पृ० ६८, १०३ )

६-वारिषेण ने अपनी पहिले वाली बत्तीस ३२ पत्नियों को बुलाया और अपने सामने खड़े हुए एक शिष्यको उन्हें अपने घर डाल लेने के लिये कहा।

( दि० आराधना कथा कोष, प्रत्यु० पृ० ६८ )

आप वास्तव में देख चूके हैं कि ये सब अनीच्छनीय विधान श्वेताम्बर शास्त्रो के नहीं किन्तु दिगम्बर शास्त्रों के हैं।

इसके अतिरिक्त प्रायश्चित के जरिये शोचा जाय तो प्रायश्चित्त विधान दोनों शास्त्रो में एकसा ही उपदिष्ट है।

शास्त्रकारों ने परिस्थिति की विषमता और दोषों की तरतमता को भिन्न २ रूपसे बता कर प्रायश्चित दान को एक दम विशद कर दिया है, इस हालत में श्वेताम्बर या दिगम्बर किसी भी जैन मुनि को मांसभोजी या काम भोगी बताना। यह सिर्फ निन्दा रूप ही है।

दिगम्बर—उत्सर्ग और अपवाद दोनों सापेक्ष मार्ग है उन को मद्देनजर रखकर प्रवृति करना चाहिये मगर मत भंग नहीं करना चाहिये।

जैन—मुनिको मन, वचन और काया से करना, कराना और अनुमोदन देना इनके त्याग रूप प्रतिज्ञा है, प्राणांत कष्ट में भी उसका पालन करना चाहिये यह उत्सर्ग मार्ग है, और उसमें

स कारण फर्क पड़े वह अपवाद मार्ग है। ये दोनों विधि मार्ग हैं। अपवाद भी देश काल परिश्रम और सहन शीलता के कारण उपयुक्त है, माने, आर्तध्यान और रौद्र ध्यान से बचने के लिये विधि मार्ग है और उस अपवाद सेवन की शुद्धि तो प्रायश्चित से हो ही जाती है।

अपवाद में व्रत प्रतिज्ञा का अविकल स्वरूप नहीं रहता है। जैसे कि—

उत्सर्ग-मुनि किसी जीव की हिन्सा न करे ?

अपवाद-मुनि नदी को पार करे ?

उत्सर्ग-मुनि रात्रि भोजन न करे ?

अपवाद-पंचानां मूल गुणानां रात्रि भोजन बर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतमं प्रति सेवमानः पुलाकनिर्गन्थो भवति

(दिगम्बर तत्वार्थ सूत्र).

उत्सर्ग—दिगम्बर मुनि पांच तरह के वस्त्र को न रक्खे।

अपवाद—दिगम्बर मुनि वस्त्र को पहिनें, कम्बल ओढे।

(१) चर्यादिवेलायां। तट्टी सादरादिकेन शरीर माच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनः तन्मुञ्चतीति उपदेश कृतः संयमिनां इत्यपवादवेषः। + + सोपि अपवादलिंगः प्रोच्यते। उत्सर्ग वेषस्तु नग्न एव ज्ञातव्यः। सामान्योक्तो विधि रुत्सर्गः, विशेषोक्तो विधि रपवादः, इति परिभाषणात्।

(दर्शन प्राभृत गा० २४ की श्रुतसागरी टीका पृ० २१)

(२) "द्रव्यलिंग प्रतीत्येति" तत्किं केचिदसमर्था महर्षयः शीतकालादौ कंबलशब्दवाच्यं कौशेयादिकं गृह्णन्ते, न तत् प्रक्षालन्ते न सीव्यन्ते न प्रयत्नादिकं कुर्वन्ति, अपर काले परिहर-

न्ति। केचित् शरीरे उत्पन्न दोषाः लज्जितत्वात् तथा कुर्वन्ति इति व्याख्यानं "आराधना भगवती" प्रोक्ता अभिप्रायेण अपवादरूपं ज्ञातव्यं। उत्सर्गापवादयो रपवादो विधि र्बलवान् इति।

(तत्वार्थसूत्र सर्वार्थसिद्धि की श्रुतसागरी टीका)

(३) श्री पं० जिनदास शास्त्री सोलापुरवाले ने दिगम्बर मुनियों में दो भेद माने हैं। एक उत्सर्ग लिंग धारी और दूसरा अपवाद लिंग धारी। उत्सर्ग लिंग धारी दिगम्बर रहता है। और अपवाद लिंग धारी दिगम्बर दीक्षा लेकर भी कपड़ा ले सकता है। (जनसमुदाय में सवस्त्र रहना और एकान्त स्थान में दिगम्बर रहना) और दिगम्बर मुनि भी कारण की अपेक्षा से अर्थात् जिन के त्रिस्थान दोष है जो लज्जावान् है, थंडी परिषह सहन करने में असमर्थ है; एसे दिगम्बर मुनि को जन समुदाय में सवस्त्र रहना चाहिये। और उस वस्त्र लेने से उनको दोष भी नहीं आता है। प्रायश्चित भी नहीं लेना पड़ता। और उसे अपवाद लिंग कहना चाहिये, एसा उनका मत है।

(वीरसं० २४६६ का० शु० ५ का जैनमित्र व० ४१ अं० १)

वास्तव में उत्सर्ग का प्रतिपक्षी अपवाद ही है, इसलिये उत्सर्ग में व्रत का जो स्वरूप है वह अपवाद में कैसे रह सकता है? जहाँ उत्सर्ग व्यवस्था नहीं कर पाता है, वहाँ अपवाद व्यवस्था करता है, और उत्सर्ग द्वारा जो ध्येय है उसी ही ध्येय को प्राप्त कराता है।

दिगम्बर आचार्य भी एकान्त उत्सर्ग यानी मरने की बातों को महान् लेप में सामिल करके अपवाद की वास्तविकता को अपनाते हैं।

(प्रवचन सार गा० ३० टीका)

दिगम्बर—हमारे पास जिनोक्त असली वाणी तो है नहीं, सब छद्मस्थ आचार्य कृत ग्रन्थ ही हैं। इसके लिये हमारे पं० चम्पालालजी और पं० लालारामजी शास्त्री लिखते हैं कि-

वर्तमान काल में जो ग्रन्थ हैं सो सब मूलरूप इस पंचम काल के होने वाले आचार्यों के बनाये हैं। इत्यादि।

( चर्चा सागर चर्चा-२५० पृ० ५०३ )

अर्थात् उपलब्ध सब दिगम्बरशास्त्र तीर्थंकरो ने नहीं किन्तु आचार्यों ने बनाये हैं, मगर इन ग्रंथों में सीर्फ नग्न आदि के बारे में जोर दिया है, सब बातों में भी वैसा ही करना जरूरी था, माने ऊपरोक्त अपवाद वगैरह सब बातो का सुधार करना लाजमी था। न मालूम उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? फल स्वरूप हमारे आजकल के नये विद्वान तो उन ग्रन्थों को भी उड़ाकर नये ग्रन्थ बनाने को तैयार हुए है।

ता० १८-२-१९३८ के संघ अधिवेशन में पाँच वां प्रस्ताव भी हो चुका है कि-

"भा० दिगम्बर जैन संघ का यह अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि-समाज में फैली हुई दण्ड व्यवस्था की वर्तमान अव्यवस्था को दूर करने के लिये निम्नलिखित ( ७ ) विद्वानों की एक समीति कायम की जाय जो कि शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर इस अव्यवस्था को दूर करने के लिये समाज के लिये उपयोगी दृढ व्यवस्था का रूप निश्चित करे" इत्यादि।

माने पुराने दिगम्बरीय ग्रन्थ अप्रमाणिक हैं।

**जैन**—जहाँ कृत्रिमता है वहाँ रद्दोबदल चली आती है, "विवेक-पतितानां तु भवति विनिपातः शतमुखः" इस न्याय से

आपके शास्त्र बदलते आये हैं और बदलते रहेंगे।

वे पंडित भी गृहस्थ ही हैं, जिनको न ब्रह्मचर्य है, न भक्षाभक्ष की मर्यादा है न चारित्र है। वे मनमानी लिखदें और वह दिगम्बर समाज का शास्त्र बन जाय। मुबारक हो, इन दिगम्बरीय आप्तागम को। महानुभाव? जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है। अपवाद को उड़ाने वाला या एकान्त को मानने वाला, जैन कहलाने के योग्य भी नहीं रह सकता है।

दिगम्बर—मुनि दूसरे को दंडे, बांधे या मारे ऐसा अपवाद तो उचित नहीं है। जैसा कि कालिकाचार्य जीने साध्वी की रक्षा और संघ के हित निमित्त किया है।

जैन—दिगम्बर द्रव्य संग्रह वृत्ति वगैरह में विष्णु कुमार ने वचन छल से बलि को बांधा था ऐसा लिखा है। तथा विद्याधर श्रवण और वज्रकुमार का भी वैसा ही प्रसंग उल्लिखित है। आप इनको ठीक क्यों मानते हैं?

दिगम्बर—धर्मरक्षण के लिये ऐसा करना पड़ा। वे अपनी इन्द्रियों के सुख के लिये ऐसा नहीं करते।

जैन—तब तो आपने अपवाद को स्वीकार कर लिया।

दिगम्बर—यदि ऐसा है तो किसी को बांधे, दंड देवे, मगर उसको जान से मारना ठीक नहीं है। मारने से व्रत भंग होता है।

जैन—क्या तीन योग और तीन कोटि से प्रतिज्ञा धारक मुनि को दूसरे को बांधने में अहिंसा व्रत का उल्लंघन नहीं है? वचन छल करने में सत्य व्रत का भंग नहीं है?

दिगम्बर—प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा, और द्वेष बुद्धा अन्यस्य दुःखोत्पादने हिंसा होने पर भी धर्म रक्षा के कारण

यह हिंसा हिंसा नहीं मानी जाती।

यदि जिनसूत्र मुल्लंघंते तदाऽऽस्तिकै र्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः तथापि यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा समर्थै रास्तिकैः उपानद्भि गूथ लिप्ताभिः मुखे ताड़नियाः, तत्र पापं नास्ति।

उक्तं चोत्तर पुराणस्य वर्द्धमान पुराणे—

सोपि पापः स्वयं क्रोधा दरुणी भूत वीक्षणः।
उद्यमी पिंड माहर्तुं, प्रस्फुरद्दशन च्छदः ॥ १ ॥
सोढुं तदक्षमः कश्चिद्, असुरः शुद्धदृक् तथा।
हनिष्यति तमन्यायं, शक्तः सन् सहते नहि ॥ २ ॥
सोपि रत्नप्रभां गत्वा, सागरोपम जीवितः।
चिरं चतुर्मुखो दुःखं, लोभादनु भविष्यति ॥ ३ ॥
धर्मनिर्मूल विध्वंसं, सहन्ते न प्रभावकाः।
"नास्ति सावद्यलेशेन, विना धर्म प्रभावना" ॥ ४ ॥
धर्मध्वंसे सतां ध्वंसः, तस्माद् धर्मद्रुहो ऽधमान् ॥
निवारयन्ति ये सन्तो, रक्षितं तैः सतां जगत् ॥ ५ ॥
(दर्शन प्राभृत गा० २ की श्रुत सागरी टीका पृ० ४)

**जैन**—तब तो आप अपवाद को धर्म मानने के पक्ष में हैं

**दिगम्बर**—उपसर्ग और अपवाद को इन्साफ न देने से हमारे दिगम्बर समाज की कैसी दुर्दशा हुई है। उसका यथार्थ स्वरूप दिगम्बर विद्वान् प्रो० आ० ने० उपाध्ये M. A. फाइनल इस प्रकार बताते हैं।

"आचार-शास्त्र में वर्णित उत्सर्ग और और अपवाद मार्गों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साधु समुदाय में इस श्रम साध्य प्रबन्ध ने मतभेद के लिये बड़ा अवसर दिया. जब किसी प्रधान आचार्य का स्वर्गवास हो जाता था तब सर्वदा

संघ में फूट पड़ने का भय बना रहता था? दिगम्बर सम्प्रदाय में संघ भेद होने का यही मुख्य कारण है। इस के सम्बन्ध की घटनाओं को जानने के लिये पुरातत्व संग्रह ( Epigraphical Record ) को सावधानी से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

(जैनदर्शन, व० ४ अं० ७ पृ० २९१)

उपाध्ये के इस लेख से स्पष्ट है कि दि० समाज उत्सर्ग और अपवाद में खेंचातानी करने से मूल, नन्दी, माथुर, यापनीय काष्ठा, इत्यादि अनेक टुकड़ों में विभक्त हो गयी है।

जैन—यद्यपि दिगम्बर विद्वान श्वेताम्बर उत्सर्ग और अपवाद पर आक्षेप करते हैं किन्तु दिगम्बर मुनि भी अपवाद और प्रायश्चित से परे नहीं हैं।

श्वेताम्बर शास्त्रों में नमुचि वगैरह का जो उल्लेख है वह धर्मरक्षा की दृष्टि से है और अपवाद रूप होने से माकूल है।

भूलना नहीं चाहिये कि जैन दर्शन में उत्सर्ग और अपवाद से ही सारी व्यवस्था होती है।

दिगम्बर—मुनि को उपासकों के प्रति आशीर्वाद में "धर्मवृद्धि" कहना चाहिये, धर्मलाभ नहीं कहना चाहिये।

जैन—वत्थु सहावो धम्मो, अतः आत्मा को स्वभाव का लाभ हो और विभाव का अभाव हो यही इच्छनीय वस्तु है। इसकारण "धर्मलाभ" कहना ही उचित आशीर्वाद है। इसका अर्थ होता है कि-आत्मा के आठों गुणों की प्राप्ति हो।



# मोक्ष योग्य अधिकार

दिगम्बर—मान लो कि वस्त्रधारी मुनि मोक्ष में चला जायगा जबतो गृहस्थ भी केवली होकर मोक्ष में चला जायगा। आचार्य कुंद कुंद स्वामी ने तो समय प्राभृत गा० ४३८, ४० में गृहस्थलींग में मोक्ष की मना की है । तो क्या गृहस्थ मोक्ष में जाता है?

जैन—हाँ? यद्यपि ऐसा क्वचित ही बनता है, परन्तु ऐसा होने में तनिक भी शंका का स्थान नहीं है। जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है। जैन दर्शन भाव चारित्र वाली आत्मा की मोक्ष मानता है, शरीर की या वस्त्रों की नहीं। दिगम्बर शास्त्र भी इस बात के गवाह हैं।

आ० कुंद कुंदजी समय प्राभृत गा० ४३९, ४०, ४१ में भाव आत्मा को ही मोक्ष बताते हैं गा० ४४३ में गृहीलींग ममत्व की मना करते है।

दिगम्बर-श्रावक छटे गुण स्थान को भी नहीं पाता है तो फिर मोक्ष को कैसे पा सकता है!

जैन—मूर्च्छावाला छटे गुण स्थान को न पावे, यह तो ठीक बात है, किन्तु श्रावक ही नहीं पावे यह कैसे माना जा सकता है? दिगम्बर आचार्य तो गृहस्थ को भी छटे सातवें गुणस्थान का अधिकारि मानते है। ये फरमाते हैं कि पंचम गुण स्थानवर्ति श्रावक ध्यान दशा में अप्रमत गुणस्थान को पाता है और अंतर्मुहूर्त के बाद में छटे में आता है। लिखा है कि—

फिर यही सम्यग् दृष्टि जब अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को (जो श्रावक के व्रतों को रोकती है) उपशम कर देता है तब चौथे से पाँचवें देश विरत गुण स्थान में आजाता है। इस दरजे में श्रावक

की ग्यारह प्रतिमाएं पाली जाती है इसके आगे के दरजे साधु के लिये है। यही श्रावक जब प्रत्याख्यानावरण कषाय का (जो साधु व्रत को रोकते हैं) उपशम कर देता है। और संज्वलन व नौं कषाय का (जो पूर्ण चारित्र को रोकती है) मंद उदय साथ २ करता है तब पाँचवें से सातवें गुण स्थान अप्रमत्त विरत में पहुँच जाता है छठे में चढ़ना नहीं होता है इस सातवें का काल अन्तर्मुहूर्त का है यहाँ ध्यान अवस्था होती है फिर संज्वलनादि तेरह कषायों के तीव्र उदय से प्रमतविरतनाम छठे गुण स्थान में आ जाता है।

(श्रा कुंद कुन्द कृत पंचास्ति काय गा० १३१ की भाषा टीका, खंड २ पृ० ७३)

इस पाठ से सिद्ध है कि गृहस्थ छठे सातवें गुण स्थान का अधिकारी है, एवं तेरहवें गुण स्थान का भी अधिकारी है। भरत चक्रवर्ती ने गृहस्थ वेष में ही केवल ज्ञान पाया है।

दिगम्बर—दिगम्बर आचार्य भरत चक्रवर्ती के केवल ज्ञान के बारे में कुछ और ही समाधान करते हैं।

१-योपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गतः भरतचक्री, सोपि जिनदीक्षां गृहीत्वा, विषय कषाय निवृत्ति रूप लक्षणमात्रं व्रतपरिणामं कृत्वा पश्चात् "शुद्धोपयोग" रूप रत्नत्रयात्मके "निश्चयव्रता" ऽभिधाने वीतराग सामायिक संज्ञ निर्विकल्प समाधौ स्थित्वा, केवलज्ञानं लब्धवानिति। परं तस्य स्तोककालत्वात् लोका "व्रतपरिणामं" न जानन्ति। (द्रव्य संग्रह बृहद् वृत्ति)

२—येपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गता भरतचक्रवर्त्यादयस्तेपि निर्ग्रन्थरूपेणैव। परं किन्तु तेषां परिग्रहत्यागं लोका न जानन्ति स्तोककालत्वादितिभावार्थः। एवं भावलिंग रहितानां द्रव्यलिंग मात्रं मोक्षकारणं न भवति॥

( समय प्राभृत गा० ४४४ तात्पर्य वृत्ति पृ० २०६ )

माने-भरत चक्रवर्ति गृहस्थी था, मगर पौन घंटे में व्रत परिणाम को पाकर केवल ज्ञानी होकर मोक्ष में गया। यह बात तीसरे युग की है अल्प काल होने के कारण जनता उसके व्रत परिणाम को नहीं जानती है।

जैन--यह समाधान वास्तविक समाधान नहीं है, क्योंकि उन्होंने विषय कषाय निवृत्ति रूप परिणाम धारण किया, निश्चय व्रत स्वीकारा, केवल ज्ञान पाया, और मोक्ष पाया ये चारों बात भरत चक्रवर्ति के भावलिंग-भावचारित्र की सूचक हैं, इनसे द्रव्य चारित्र की समस्या आप ही आप हल हो जाती है। जनता ने तो जैसा था वैसा ही माना। फिर भी ग्रन्थकार को क्या खटकती है, कि लोगो पर अज्ञता का आरोप करते है?

यह तीसरे युग का प्रसंग है। बाद में चौथे युग में २३ तीर्थंकर होगये, संख्यातीत केवली होगये, मगर किसी ने भी इस आपकी मानी हुई गलती को साफ नहीं किया, यह भी अजीब मान्यता है। जैन जनता तीसरे आरे ( युग ) से आज तक जिस बात को ठीक मानती है वही बात सच्ची हो सकती है कि सिर्फ द्रव्यसंग्रह आदि के वृत्तिकार कहते हैं वही बात सच्ची हो सकती है, इसका निर्णय पुराण प्रिय या इतिहासविद करले।

जनता तीसरे युग से आज तक भरत चक्री को "गृहस्थलींग सिद्ध" मानती है, ऐसा ग्रन्थकर्ता का विश्वास है और मोक्ष प्राप्ति में द्रव्यलिंग नहीं किन्तु भावलिंग यानी व्रतपरिणाम की प्रधानता है यह ग्रन्थकार को अभीष्ट है।

जब तो गृहस्थ भी इस भावलींग यानी भावचारित्र के जरिये केवलज्ञानी और सिद्ध हो सके, यह तो स्वयं ही सिद्ध है।

आ० कुन्द कुन्द स्वामी तो हिंसा, परिग्रह आदि वस्तुओं के मुकाबले में साफ साफ अध्यवसाय की ही प्रधानता बताते हैं। जैसा कि—

अज्झवसिदेण बंधो, सत्ते मारेहि मा व मारेहि।
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छय णयस्स ॥ २८० ॥
एव मालिये अदत्ते, अबम्भचेरे परिग्गहे चेव।
कीरहि अज्झवसाणं, जं तेण दु बज्जंद पावं ॥ २८१ ॥
वत्थुं पडुच्च जं पुण, अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं।
णहि वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधो त्ति ॥ २८२ ॥
एदाणि णत्थि जेसिं, अज्झवसाणाणि एगमादीणि।
ते असुहेण सुहेण य, कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥ २६३ ॥
बुद्धि ववसाओ वि य, अज्झवसाणं मदीय विण्णाणं।
इक्कट्ठमेव सव्वं, चित्तो भावो य परिणामो ॥ २६५ ॥
एवं ववहारणयो, पडिसिद्धो जाण णिच्छय णयेण।
णिच्छय णय सल्लीणा, मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ २६६ ॥

आ० कुंद कुंदजी समयसार गा० ४४३ में पाखंडलींग और गृहीलींग वगैरह में ममता रखने की मना करते ही हैं, साथ साथ सब लींगों को छोड कर सीर्फ ज्ञान दर्शन व चारित्र को ही मोक्ष हेतु मानते हैं। और २ दिगम्बर आचार्य भी मोक्ष प्राप्ति के लीये नग्नता पींछी आदि वाह्य भेष को नहीं, किन्तु आत्मा के गुणों को ही प्रधान मानते हैं। देखिये—

लिंगं मुइत्तु दंसण-णाण चरित्ताणि सेवंति ॥ ४३६ ॥
दंसण णाण चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥ ४४१ ॥
णिच्छदि मोक्खपहे सव्व लिंगाणि ॥ ४४४ ॥

( समयसार प्राभृत )

अयसाण भायणेण य, किं ते णग्गेण पावमलिणेण।
पेसुराण हास मच्छर-माया बहुलेण सवणेण ॥ ६६ ॥
वने ऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां,
गृहेपि पंचेन्द्रिय निग्रह स्तपः।
अकुत्सिते वर्त्मनि यः प्रवर्तते,
विमुक्तरागस्य गृहं तपोवनं ॥ १ ॥

आ० कुंदकुंदकृतभावप्राभृत गा० ६६ श्रुतसागरीटीका ( पृ० २१३ )

जह सलिलेण ण लिप्पइ, कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ, कसाय विसएहिं सप्पुरिसो ॥ १५२ ॥
धात्रीबाला ऽसतीनाथ-पद्मिनीदल वारिवत्।
दग्धरज्जु वदाभासं, भुञ्जन् राज्यं न पापभाक् ॥
अघ्नन्नपि भवेत् पापी; विघ्नन्नपि न पापभाक्।
परिणाम विशेषेण, यथा धीवर कर्षको ॥ ४ ॥

(आ० कुंद कुंद कृत भाव प्राभृत गा० १५२ और १६२ की श्रुत सागरी टीका पृ० २९६; ३०२, )

भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ॥२॥
भावेण होई लींगी ॥ ४८ ॥ भावो कारण भूदो ॥ ६६ ॥
जाणेहिं भावधम्मं ॥ २ ॥
नयत्यात्मानमात्मेव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥
अप्पा तारइ तम्हा अप्पाओ झायव्वो ॥
समभावे जिण दिट्ठं ॥ वगैरह २।

पं० बनारसी दास जी बताते हैं कि—

जो घर त्यागे कहावे जोगी, घर वासी कह कहें जूं भोगी।
अन्तर भाव न परखे जोई, गोरख बोले मूरख सोई ॥

( बनारसी विलास गोरख वचन गा० २ पृ० २०९ )

मोक्ष-अनेकांत जैन दर्शन में शुध्ध परिणाम वाला गृहस्थ लींगी भी मोक्ष का अधिकारी है।

दिगम्बर—मूर्च्छारूप परिग्रह का अभाव होने से वस्त्र धारी मुनि मोक्ष में जाता है, गृहस्थ भी मोक्ष में जाता है, तो कभी २ कोई आभूषण धारी भी मोक्ष में चला जायगा।

जैन—जहाँ बाह्य वस्तु की प्रधानता नहीं है वहाँ यह भी होना मुमकिन है · जैनदर्शन मूर्छा न होने के कारण उसको भी मोक्ष मानता है।

समय प्राभृत गा० ४४४ की तात्पर्यवृत्ति में और दिगम्बरीय पाण्डव चरित्र में तप्त लोहा के आभूषण होने पर भी मोक्ष प्राप्ति बताई है। यद्यपि वह परिषह रूप था किन्तु आभूषणों के अस्तित्व में केवल ज्ञान की रुकावट नहीं मानी है। और उसका कारण वही "ममत्वाभावात्" ही बताया है। अप्रमत्त आत्मा को वस्त्र पीछी या आभूषण है या नहीं है, ऐसी तनिक भी ममत्व विचारणा नहीं होती है। यही कारण है कि वह उसी हालत में मोक्ष तक पहुंच जाता है।

दिगम्बर—तब तो अजैन सन्यासी भी भाव से जैन बनकर क्षपकश्रेणी में चढकर केवली होगा, मोक्षगामी हो जायगा!

जैन—सच्चे अनेकान्ती जैन दर्शन को यह भी इष्ट है। मोक्ष के लिये किसी का ठेका तो है नहीं? नामजैन नरक में भी जाता है भाव जैन मोक्ष में भी चला जाता है। वल्कलचीरी जैनलिंगी नहीं था अन्यलिंगी था, फिर भी वह मोक्षगामी हुआ। अतः जैन दर्शन साफ २ कहता है कि-

कषाय मुक्तिः किल मुक्ति रेव ॥

समभाव भावियप्पा, लहई मुक्खं न संदेहो ॥

सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र वाली आत्मा मोक्ष के योग्य है, चाहे वह किसी भी वेश में, जाति में या वेद में हो।

माने योग्यता को पाकर अन्य लिंगी भी सिद्ध हो सकता है।

**दिगम्बर**—शूद्र तो पांचवे गुणस्थान का अधिकारी है। वह मोक्ष में नहीं जाता है। श्वेताम्बर समाज शूद्रों की भी मुक्ति मानता है वह तो उसकी गलती है।

**जैन**—जैसे कोई भी द्रव्य लिंग मोक्ष का बाधक नहीं है वैसे ही कोई भी जाति मोक्ष बाधक नहीं है। एकेन्द्रिय वगैरह वास्तविक जाति है और ब्राह्मण वगैरह काल्पनिक जाति है, इस हालत में शूद्र मुक्ति का एकान्त निषेध करना, न्याय मार्ग नहीं है। अतएव स्याद्वाद दर्शन शूद्र मुक्ति के पक्ष में है।

**दिगम्बर**—दिगम्बर समाज शूद्र मुक्ति का निषेध करता है उसका कारण शूद्र का नीच गोत्र है। चारो गति में नारकी तीर्यंच म्लेच्छ-शूद्र और अंतर द्वीपज मनुष्य नीच गोत्री हैं तथा आर्यमनुष्य भोगभूमि के मनुष्य व देव उच्च गोत्री हैं। इससे पाया जाता है कि चन्दन स्फटिक चित्रवल्ली, मारवल वगैरह जो की श्रेष्ट जातियां है जिनकी प्रतिमा बनाई जाती हैं, जल केसर चन्दन फूल वनस्पति का इत्र वगैरह जो कि तीर्थंकर के ऊपर चढाये जाते हैं, अक्ष, जिसकी स्थापना होती है, गाय सफेद हाथी मृगराज घोडा कामधेनुगाय हंस देशविरतिआदिधर्म के अधिकारी तिर्यञ्च व शूद्र ये सब भी नीच गोत्री हैं, और धर्म द्वेषी साधुद्वेषी नमुचि सम्यक्त्व रहित युगलियें अविरतिदेव और संगमक मेघमाली जैसे पापीदेव ये स भी उच्च गोत्री हैं।

गोत्र की व्यवस्था इस प्रकार है।

१—संताण कमेणा गयजीवाऽऽयरणस्स गोदमिदि संणणा।
उच्चं नीचं चरणं, उच्चं नीचं हवे गोदं ॥ १३ ॥

(आ० नेमिचन्द्र कृत गोम्मट सार जीव कांड गा० १३)

२—यस्योदयात् लोक पूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चै र्गोत्रम्। यदुदयात् गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् ॥

(आ० पूज्यपाद कृत सर्वार्थ सिद्धि अ० ८ सूत्र १२ टीका)

३—दीक्षायोग्य साध्वाचाराणां साध्वाचारै कृत सम्बन्धाना मार्य प्रत्ययाभिधान व्यवहार निबन्धनानां पुरुषाणां संतानः उच्चै गोत्रम् ॥ तद्विपरीतं नीचै गोत्रम्

(आ० भूतबलि कृत षट खंडागम ४ वेदनाखंड ५ वा पयडि अधिकार का सूत्र १२९ की आ० वीरसेन कृत धवला टीका)

४-नीच गोत्र का उदय पांचवे गुण स्थानक तक है
देसे तदीय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरियगदी
छट्ठे आहार दुगं, थिण तियं उदय वोच्छिण्णा ॥ २६७ ॥
देसे तदीय कसाया, नीचं एमेव मनुस सामण्णे
पज्जते वि य इत्थीवेदा अपज्जत परिहीणा ॥३००॥

(गोम्मट सार—कर्मकांड)

इन पाठों से शूद्रों का मोक्ष ही नहीं वरन् शूद्रों की दीक्षा का भी निषेध है।

जैन—यह दिगम्बरसम्मत गोत्रव्यवस्था स्पष्ट नहीं है देखिये

१-गोम्मटसार में उच्चं चरणं उच्चं गोदं हवे, नीचं चरणं नीचं गोदं हवे। उच्च आचरण से उच्च गोत्र व नीच आचरण से नीच गोत्र माना है।

२—सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक व श्लोक वार्तिक में-"लोक पूजितेषु", "गर्हितेषु", लोक मान्य और लोक निंद्यरूप लौकिक व्यवहार को ही गोत्र माना है।*

३-धवला टीका में गोत्र का साधु और असाधु आचार से सम्बन्ध जोड़ा है। यहां साध्वाचार शब्द से "प्रशस्त आचार" लेना है यहाँ "दीक्षा योग्य" शब्द कुछ विचित्र ही है क्योंकि दीक्षा का अभिप्राय मुनि दीक्षा का ही लिया जाय तो देव युगलिक और अभवि मनुष्य को उच्च गोत्री नहीं कहा जायगा, देव किसी की संतान नहीं है, युगलिकों को दीक्षा योग्य साधु आचार वाले से सम्बन्ध और संतानत्व भी नहीं है अतः वे उच्चगोत्री नहीं रहेंगे। मगर दिगम्बर आचार्य उन्हें उच्च गोत्री ही मानते हैं। यदी श्रावक के व्रत भी दीक्षा में सामिल हैं तो पंचेन्द्रिय तीर्यंचं भी उच्च गोत्री ठहरेंगे और उनकी उच्चता देवों से भी बढ़ जायगी।

इसके अलावा उस १२६ सूत्र की ही धवला टीका में "नापि पंच महाव्रत ग्रहण योग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते" तथा "नाणुव्रतिभ्यः समुत्पत्तौ तद् व्यापारः॥" पाठ से भी उपरोक्त लिखित अभिप्राय की पुष्टी होती है।

४-इस प्रकार यह गोत्र व्यवस्था सर्वथा अस्पष्ट है

इस अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि सम्यक्त्व या मिथ्यात्व पाप या पुण्य और धर्म या अधर्म के ऊपर गोत्रकर्म का कुछ असर नहीं पड़ता है।

इस विवेचन का सारांश यह है कि-दिगम्बर विद्वान् गोत्र कर्म को आचार पर निर्भर मानते हैं उच्च, नीच आचारों के

---

*गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्य्यन्ते ( सेव्यन्ते ) इति आर्याः॥

( सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक )

परिवर्तन के साथ उच्च नीच गोत्र के उदय का भी परिवर्तन मानते हैं जाति और कुल को कल्पना रूप मानते हैं और उच्च आचार वाले शूद्र को जिन दीक्षा की प्राप्ति भी मानते हैं फिर मोक्ष का निषेध कैसे माना जाय ? जहां सम्यक् चारित्र है जिन दीक्षा है वहां मोक्ष है ही।

दिगम्बर—गोत्र का परिवर्तन और जाति आदि कल्पना के लिये दिगम्बर प्रमाण बताइये।

जैन—दिगम्बर विद्वान् गोत्रकर्म की प्रकृति में आपसी परिवर्तन और जाति कुल को असद् रूप मानते हैं

उनके पाठ निम्न प्रकार हैं।

> णवि देहो वंदिज्जइ, णवि कुलो ण वि य जाइ संजुत्ता
> को वंदिम गुण हीणो, णहु समणो णेव सावओ-
> होई ॥ २७ ।

शरीर, कुल जाति श्रमण लिंग या श्रावक वेष वन्दनीय नहीं हैं; गुण वन्दनीय हैं।

( आ० कुन्द कुन्द कृत दर्शन प्राभृत )

> उत्तम धम्मेण जुत्तो, होदि तिरक्खोवि उत्तमो देवो ॥
> चंडालो वि सुरीन्दो, उत्तमधम्मेण संभवदि ॥

चंडाल और तीर्यंच धर्म के जरिये उत्तम माने जाते हैं।

( स्वामीकार्तिकेया नुप्रेक्षा गा० ४३० )

> पूर्वविभ्रम संस्कारात्, भ्रान्तिं भूयोपि गच्छति ॥

विभाव की विचारणा करने वाला जीव ज्ञानी होने पर भी मैं ब्राह्मण हूँ यह शूद्र है ऐसे भ्रम में पुराने विभ्रम संस्कार से पुनः फंस जाता है ॥ ४४ ॥

जीर्ण वस्त्र यथात्मानं न जीर्णं मन्यते तथा ।
जीर्णे स्वदेहे प्यात्मानं, नजीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

यहाँ पर उत्तरार्ध ऐसा भी बन सकता है कि—

शूद्र देहे तथात्मानं न शूद्रं मन्यते बुधः

जीर्ण वस्त्र होने पर उसकी आत्मा जीर्ण नहीं मानी जा सकती है ( शूद्र देह होने से उसकी आत्मा शूद्र नहीं हो सकती है )

नयत्यात्मान मात्मैव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥

आत्मा ही आत्मा को संसार में फंसाता है और मोक्ष में ले जाता है।

जाति र्देहा श्रिता दृष्टा, देह एवात्मनो भवः ॥
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात् ते ये जाति कृताग्रहाः ॥ ८८ ॥

ब्राह्मण ही मोक्ष को पाता है इत्यादि जाति के आग्रह रखने वाला संसार में बुरी तरह भटकता फिरता है।

जाति लिंग विकल्पेन, येषां च समयाग्रहः ।
तेपि न आप्नु वन्त्येव, परमं पदमात्मान : ॥ ८६ ॥

मैं ब्राह्मण हूँ, मैं नग्न हूँ, दिगम्बर हूँ, ऐसा आग्रह मोक्ष का बाधक है परम पद प्राप्ति में रोड़े लगाते है।

( आ० पूज्यपाद कृत समाधि शतक )

न जातिर्गर्हिता काचित्, गुणाः कल्याण कारणं ।
व्रतस्थमपि चांडालं, तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है, गुण ही कल्याण करने वाले होते हैं। चांडाल-भंगी भी व्रत धारी होता ब्राह्मण के समान है।

चिन्हानि विटजातस्प, संति नांगेषु कानिचित् ।
अनार्य माचरन् किंचित्, जायते नीच गोचरः ॥

गोत्र की व्यवस्था इस प्रकार है।

१—संताण कमेणा गयजीवाऽऽयरणस्स गोदमिदि संएणा।
उच्चं नीचं चरणं, उच्चं नीचं हवे गोदं ॥ १३ ॥

( आ० नेमिचन्द्र कृत गोम्मट सार जीव कांड गा० १३ )

२—यस्योदयात् लोक पूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चै र्गोत्रम्।
यदुदयात् गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् ॥

( आ० पूज्यपाद कृत सर्वार्थ सिद्धि अ० ८ सूत्र १२ टीका )

३—दीक्षायोग्य साध्वाचाराणां साध्वाचारैः कृत सम्बन्धाना मार्य प्रत्ययाभिधान व्यवहार निबन्धनानां पुरुषाणां संतानः उच्चै गोंत्रम् ॥ तद्विपरीतं नीचं गोंत्रम्

( आ० भूतबलि कृत षट खंडागम ४ वेदनाखंड ५ वा पयडि अधिकार का सूत्र १२९ की आ० वीरसेन कृत धवला टीका )

४-नीच गोत्र का उदय पांचवे गुण स्थानक तक है
देसे तदीय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरियगदी
छट्टे आहार दुगं, थिण तियं उदय वोच्छिण्णा ॥ २६७ ॥
देसे तदीय कसाया, नीचं एमेव मनुस सामएणे
पज्जते वि य इत्थीवेदा अपज्जत परिहीणा ॥३००॥

( गोम्मट सार—कर्मकांड )

इन पाठों से शूद्रों का मोक्ष ही नहीं वरन् शूद्रों की दीक्षा का भी निषेध है।

जैन—यह दिगम्बरसम्मत गोत्रव्यवस्था स्पष्ट नहीं है देखिये

१-गोम्मटसार में उच्चं चरणं उच्चं गोदं हवे, नीचं चरणं नीचं गोदं हवे। उच्च आचरण से उच्च गोत्र व नीच आचरण से नीच गोत्र माना है।

२—सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक व श्लोक वार्तिक में-"लोक पूजितेषु", "गर्हितेषु", लोक मान्य और लोक निंद्यरूप लौकिक व्यवहार को ही गोत्र माना है।*

३-धवला टीका में गोत्र का साधु और असाधु आचार से सम्बन्ध जोड़ा है। यहां साध्वाचार शब्द से "प्रशस्त आचार" लेना है यहाँ "दीक्षा योग्य" शब्द कुछ विचित्र ही है क्योंकि दीक्षा का अभिप्राय मुनि दीक्षा का ही लिया जाय तो देव युगलिक और अभवि मनुष्य को उच्च गोत्री नहीं कहा जायगा, देव किसी की संतान नहीं है, युगलिकों को दीक्षा योग्य साधु आचार वाले से सम्बन्ध और संतानत्व भी नहीं है अतः वे उच्चगोत्री नहीं रहेंगे। मगर दिगम्बर आचार्य उन्हें उच्च गोत्री ही मानते हैं। यदि श्रावक के व्रत भी दीक्षा में सामिल हैं तो पंचेन्द्रिय तीर्यंच भी उच्च गोत्री ठहरेंगे और उनकी उच्चता देवों से भी बढ़ जायगी।

इसके अलावा उस १२६ सूत्र की ही धवला टीका में "नापि पंच महाव्रत ग्रहण योग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते" तथा "नाणुव्रतिभ्यः समुत्पत्तौ तद् व्यापारः॥" पाठ से भी उपरोक्त लिखित अभिप्राय की पुष्टी होती है।

४-इस प्रकार यह गोत्र व्यवस्था सर्वथा अस्पष्ट है

इस अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि सम्यक्त्व या मिथ्यात्व पाप या पुण्य और धर्म या अधर्म के ऊपर गोत्रकर्म का कुछ असर नहीं पड़ता है।

इस विवेचन का सारांश यह है कि-दिगम्बर विद्वान् गोत्र कर्म को आचार पर निर्भर मानते हैं उच्च, नीच आचारों के

---

*गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्य्यन्ते (सेव्यन्ते) इति आर्याः॥
(सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक)

परिवर्तन के साथ उच्च नीच गोत्र के उदय का भी परिवर्तन मानते हैं जाति और कुल को कल्पना रूप मानते हैं और उच्च आचार वाले शूद्र को जिन दीक्षा की प्राप्ति भी मानते हैं फिर मोक्ष का निषेध कैसे माना जाय ? जहाँ सम्यक् चारित्र है जिन दीक्षा है वहाँ मोक्ष है ही।

दिगम्बर—गोत्र का परिवर्तन और जाति आदि कल्पना के लिये दिगम्बर प्रमाण बताइये।

जैन—दिगम्बर विद्वान् गोत्रकर्म की प्रकृति में आपसी परिवर्तन और जाति कुल को असद् रूप मानते हैं
उनके पाठ निम्न प्रकार हैं।

णवि देहो वंदिज्जइ, णवि कुलो ण वि य जाइ संजुत्ता
को वंदिम गुण हीणो, णहु समणो णेव सावओ-
होई ॥ २७ ।

शरीर, कुल जाति श्रमण लिंग या श्रावक वेष वन्दनीय नहीं हैं; गुण वन्दनीय हैं।

( आ० कुन्द कुन्द कृत दर्शन प्राभृत )

उत्तम धम्मेण जुत्तो, होदि तिरक्खोवि उत्तमो देवो ॥
चंडालो वि सुरीन्दो, उत्तमधम्मेण संभवदि ॥

चंडाल और तीर्यंच धर्म के जरिये उत्तम माने जाते हैं।

( स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा गा० ४३० )

पूर्वविभ्रम संस्कारात्, भ्रान्तिं भूयोपि गच्छति ॥

विभाग की विचारणा करने वाला जीव ज्ञानी होने पर भी मैं ब्राह्मण हूँ वह शूद्र है ऐसे भ्रम में पुराने विभ्रम संस्कार से पुनः फस जाता है ॥ ४४ ॥

( आ० जिन सेन कृत आदि पुराण स० १८ श्लो० ४५ )

वर्णाकृत्यादि भेदानां, देहे स्मिन्नऽदर्शनात् ।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैः, गर्भाधान प्रवर्तनात् ॥
नास्ति जातिकृतो भेदः मनुष्याणां गवाश्ववत् ।
आकृति ग्रहणात्तस्मा दन्यथा परिकल्प्यते ॥

गाय घोड़ा वगैरह में भिन्नता है, परन्तु ब्राह्मणादि जातिओं में अन्य जातियों से ऐसी कोई भिन्नता नहीं है। वास्तव में जाति भेद कल्पना मात्र ही है।

( आ० गुणभद्रकृत उत्तरपुराण पर्व ७४ )

कुलजातीश्वरादि मदाविध्वस्त बुद्धिभिः ।
सद्यः संचीयते कर्म्म, नीचैर्गति निबन्धनम् ॥ ४८ ॥

( आ० शुभचन्द्र कृत ज्ञानार्णव अ० २१ श्लो० ४८ )

देह एव भवो जन्तों, यल्लिङ्गं च तदाश्रितम् ।
जात्तिवत्तद् ग्रहं तत्र, त्यत्वा स्वात्म गृहं वशेत् ॥ २६ ॥

शरीर ही जीव का संसार है, और लिंग जातियां वगैरह तो शरीर से ही सम्बन्धित रहते हैं। अतएव लिंग व जाति के अभिनिवेश को छोड़कर आत्मा का पक्षपाती बनना चाहिये॥

( पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृतम् अ० ८ )

सम्यग् दर्शन संपन्न मपि मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म गूढांगारांत रौजसम ॥ २८ ॥
श्वापि देवो पि, देवः श्वा, जायते धर्मकिल्विषात् ।
कापि नाम भवेदन्या, संपद्धर्मशरीरिणाम् ॥ २६ ॥

सम्यक्त्व वाला एवं धर्म युक्त मातंग और कुत्ता भी प्रशंसनीय है वगैरह।

( रत्न करण्ड श्रावकाचार श्लो० २८-२९ )

विप्र क्षत्रिय विट् शूद्राः प्रोक्ताः क्रिया विशेषतः ।
जैनधर्मे पराः शक्ताः ते सर्वे बांधवोपमाः ॥

आचार की विशेषता से ब्राह्मण वगैरह संज्ञाएं हैं, किन्तु धर्म में तो वे सब बन्धु के समान हैं।

( आ०.........कृत त्रिवर्णा चार धर्म रसिक )

आचारमात्र भेदेन, जातीनां भेद कल्पनम् ।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति, नीयता कापि तात्वीकी ॥
गुणैः संपद्यते जाति गुणध्वंसै र्विपद्यते ।

आचरण के भेद से जाति भेद है । परमार्थ से तो ब्राह्मण आदि कोई नियत जाती नहीं है। गुण के अनुसार जाती बनती है। गुणों के बदल जाने पर जाति भी बदल जाती है।

(धर्म परीक्षा )

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुस्थितो पि वा ।
ध्यायेत्पंच नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अपवित्रो पवित्रोवा, सर्वावस्थां गतो पि वा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं, स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥ २ ॥

मनुष्य कैसा भी हो. किन्तु नमस्कार मंत्र के जाप से वो निश्पाप पवित्र बनता है। अपवित्र भी तिर्थंकरके जाप करने से बाहिर से और भीतर से पवित्र बनता है।

( देव शास्त्र गुरु पूजा, जैन सिद्धान्त संग्रह पृ० १८४-१८५ )

गोत्र कर्म, यह जीव विपाकि प्रकृति है । नामकर्म, शरीर की भेद व्यवस्था करता है गोत्र कर्म आचरण रूप क्रिया की व्यवस्था करता है, गोत्र कर्म भाव कर्म है। "वास्तव में द्रव्या-

नुयोग की अपेक्षा जन्मतः कोई गोत्र या वर्ण नहीं है"। "वंशकृत अशुद्धता व कोढ आदि बीमारियां परम्परा तक चलती हैं यह नियम नहीं है।

"सच हो अघातिये कर्म गुण श्रेणि के आरोहण में बेजान समझे जाते हैं। गोत्रकर्म का परिवर्तन तो एक साधारण सी बात है। अघातिया कर्म जीव के दर्शन ज्ञान सम्यक्त्व आदि गुण तो क्या अनुजीव गुण स्पर्शरसगंधवर्णादि का जो ज्ञान है उसका भी घात नहीं करसकता और नीच कुल में जन्म लेने पर भी कषाय योग के अभाव से व भाव शुद्धि से नीचसंस्कार फल को प्राप्त नहीं होते। क्योंकि कुल संस्कार से बने हुए गोत्र कर्मों का पाक जीवन में होने से जीव के संयम रूप परिणाम हो जाने पर आचरण में स्वभावतः परिवर्तन हो जाता है। यही जीव विपाकी गोत्र-कर्म की प्रकृति का प्रकरणांतर गत यथार्थ अर्थ है"।
"नीच गोत्र की कर्म प्रकृति...... नीच गोत्र रूप हो जाती है" गा० ४१०, ४२२।

"यह तीनों संक्रमण अपनी २ बंधव्युच्छित्तिसे प्रारंभ होकर क्रमशः अप्रमत्त (७) से लगाकर उपशांत कषाय (११) पर्यन्त पूर्ण हो जाते हैं"

जैसे नीच गोत्र उच्च गोत्र हो सकता है उसी प्रकार उच्च गोत्र भी अपकर्षण करके नीच गोत्र हो जाता है और गोत्र कर्म का उद्वेलन होकर सर्व संक्रमण तक होता है।

बंध की अपेक्षा से भी गोत्र का परिवर्तन स्पष्ट है उपशम श्रेणी से उतरते समय सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में १-अनुत्कृष्ट उच्च गोत्र का अनुभाग बंध होता है वह सादिबंध है, २-सूक्ष्म संपराय से नीचे रहने वाले जीवों के वह अनादि बंध है, ३ अभव्य जीवों के ध्रुव बन्ध है, तथा ४—उपशम श्रेणी वाले

के अनुत्कृष्ट बंध को छोड़कर जो उत्कृष्ट बंध होता है वह अध्रुव है। इस प्रकार अनुत्कृष्ट उच्च गोत्र के अनुभाग बंध में ४ भेद बतलाये।

"उस जगह ( सम्यक्त्व वमन के बाद ) इस अजघन्य नीच गोत्र के अनुभाग बंध को सादिबंध कहना। फिर उसी मिथ्या-दृष्टि जीव को उस अंत के समय में पहले जो बंध है वह अनादि है। अभव्य जीव को वह बंध ध्रुव है। और वहाँ अजघन्य को छोड़ जघन्य हुआ वहां वह अध्रुव है।

"गोत्र कर्म के परिवर्तन का यह कितना स्पष्ट वर्णन है"

( विश्वंभरदासजी गार्गीयका "गोत्र कर्म क्या है ?" लेख, जैनमित्र व० १९; अंक ३९, ४०, ४१ )

A भोग भूमि और कर्म भूमि के जरिये गोत्र का उदयपरिवर्तन पाया जाता है।

"इस यथार्थ घटना से ही सिद्ध है कि गोत्र का उदय, संतानों में बदल जाता है।" ( पृ० २६० )

B "संतानक्रम से गोत्र का उदय बदल जाता है" ( ३३८ )

C "हमारी समझ में उनके ( अंतर द्वीपज मनुष्य के ) भोग भूमि के समान उच्च गोत्र का उदय होना चाहिये। (पृ० ४१४)

( ब्र० शीतलप्रसादजी के लेख, जैनमित्र वर्ष ४० अंक १६, २१, २७ )

१७ A तीर्थंकर भगवान का औदारिक शरीर उसी ही भव में बदल कर परमौदारिक बन जाता है वैसे गोत्रकर्म का भी परिवर्तन समझना चाहिये।

B आज कल के ८ करोड़ मुसलमान ये असल में उच्च गोत्र की संतान है, इनमें जो आचार से शुद्ध बनेगा वह उच्च गोत्री बनेगा। वगैरह।

( रवीन्द्रनाथ जैन न्यायतीर्थ का " गोत्र कर्म " लेख, जैनमित्र व० ४०
अङ्क० २४ पृ० ४४० )

१८ इस प्रकार इस लेखसे यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यखंड के मनुष्य उच्च और नीच दोनों प्रकार के होते हैं। शूद्र हीन वृत्ति के कारण व म्लेच्छ क्रूर वृत्ति के कारण नीच गोत्री, बाकी वैश्य, क्षत्रिय ब्राह्मण और साधु स्वाभिमानपूर्ण वृत्ति के कारण उच्च गोत्री माने जाते हैं. और पहली वृत्ति को छोड़कर यदि कोई मनुष्य या जाति दूसरी वृत्ति को स्वीकार कर लेता है तो उसके गोत्र का परिवर्तन भी हो जाता है, जैसे भोग भूमि की स्वाभिमानपूर्ण वृत्ति को छोड़कर यदि आर्यखंड के मनुष्यों ने हीन वृत्ति और क्रूरवृत्ति को अपनाया तो वे क्रमशः शूद्र व म्लेच्छ बनकर नीच गोत्री कहलाने लगे। इसी प्रकार यदि ये लोग अपनी हीन वृत्ति अथवा क्रूर वृत्ति को छोड़कर स्वाभिमानपूर्ण वृत्ति को स्वीकार कर लें तो फिर ये उच्च गोत्री हो सकते हैं। यह परिवर्तन कुछ कुछ आज हो भी रहा है तथा आगम में भी बतलाया है कि छठे काल में सभी मनुष्यों के नीच गोत्री हो जाने पर भी उत्सर्पिणी के तृतीय काल की आदि में उन्हीं की संतान उच्च गोत्री तीर्थंकर आदि महापुरुष उत्पन्न होंगे।

(पंडित वंशीधरजी व्याकरणाचार्य का "मनुष्यों में उच्चता नीचता क्यों ?"
लेख, अनेकांत व० २ कि० १ पृ० ५५ )

दिगम्बर—शूद्र जिनेन्द्र की पूजा करे ?

जैन—इसके लिये तो दिगम्बर आचार्यों ने भी आज्ञा दे दी है। जैसा कि—

१ अपवित्रो पवित्रो वा० (देव गुरु शास्त्र पूजा पाठ )

२—विद्याधर तीर्थंकर की पूजा करके बैठे हैं ( ३ ) इन में मातंग जाति के ये हैं ( १४ ) हरे वस्त्रवाले मातंग ( १५ ) मुर्दों

की हड्डियों के भूषणवाले भस्म से भद मैले श्मशानों (१६) काले अजीन और चमड़े के वस्त्रवाले, काल श्वपाकी (१८) श्वपाकी भंगी (१६)

( आ० जिनसेनकृत हरिवंश पुराण, सर्ग २६ श्लो० १ से २४ )

३—कियत्काले गते कन्या, आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्या महता चक्रु-र्मनोवाक्कायशुद्धितः ॥ ५६ ॥

( गौतमचरित्र अधि० ३ श्लो ५९ तीन शूद्र कन्या का पूजा पाठ)

४—धनदत्त ग्वाले ने जिनमन्दिर में जिनप्रतिमा के चरणों पर कमल पुष्प चढ़ाया। ( आराधनाकथाकोष, कथा ११२)

५—सोमदत्त माली प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था। (आराधनाकथाकोष)

दिगम्बर— क्या दिगम्बर शास्त्र में शूद्रों की मुनि दीक्षा और मुक्ति का विधान है?

जैन—हांजी है! कुछ २ पाठ देखिये-

१-नापि पंचमहाव्रतग्रहणयोग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते,

( षट् खंड, खं० ४ भा० ५ सू० १२६ की धवला टीका)

यदि यह कहा जाय कि उच्च गोत्र के उदय से पांच महाव्रतों के ग्रहण की योग्यता उत्पन्न होती है और इसी लिये जिनमें पांच महाव्रत के ग्रहण की योग्यता पाई जाय उन्हें ही उच्च गोत्री समझा जाय, तो यह भी ठीक नहीं है।

( दि० पं० जुगलकिशोर मुख्तारजी का लेख, अनेकान्त वर्ष २, किरण १ पृ० १११ )

२-अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणस्स जहण्णयं संजम-ट्ठाणमणंतगुणं ( चूर्णि सूत्र )

( षट्खंडागम संजमलब्धि अधिकार, चूर्णि )

अनार्यों—शूद्रों का जघन्य संयम प्राप्ति स्थान अनंत गुना है

२-पुव्विल्लादो असंखेज्ज० लोग मत्त छट्ठाणाणि उवरि गन्तूणेदस्स समुप्पत्तीए ! को अकम्मभूमि ओ णाम ? भरहेरवयविदेहेसु विणीत सण्णि मज्झमखंड मोत्तूण, सेस पंचखंडविणिवासीमणुओ एत्थ अकम्मभूमिओ त्ति विवक्खओ तेसु धम्मकम्मपवुत्तिए असंभवेण तब्भावो-ववत्तीदो जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहण संभवो ! त्ति णा संकणिज्जं। दिसाविजय चक्कवट्टी खंधावारेण सह मज्झिमखंडमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टिआ-दीहि सह जादवेवाहियसंबन्धाणं संजमपडिवत्तिए विरोधा-भावादो ! अहवा तत्त् कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणी-तानां गर्भेपूत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्म्मभूमिजा इतीह विवक्षिताः, ततो न किञ्चित् विप्रतिपिद्धम् तथा-जातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात् ।

प्रश्न—पांच अनार्य खंड के म्लेच्छों को दीक्षा के भाव को उत्पन्न कराने वाला योग मिलना मुश्किल है फिर वे दीक्षा कैसे लेंगे ?

उत्तर—चक्रवर्ती के साथ में मध्यम खंड में आये हुए म्लेच्छ राजा दीक्षा लें यह सम्भवित है। अथवा चक्रवर्ती और म्लेच्छ कन्या की सन्तान माता के जरिये अनार्य है, अगर वे भी दीक्षा को स्वीकार करें, तो यह भी सम्भवित है। वे दीक्षा लेते हैं, अतः पांचों खंडों में संयमस्थान बताये हैं।

सारांश—पांचों खंड के अनार्य भी दीक्षा ले सकते हैं, फिर आर्य खंड के अनार्यों का तो पूछना ही क्या ?

(आ० वीरसेनकृत जयधवला टीका दिगम्बर शास्त्र भंडार की प्रति ८२७, ८२८ )

४-म्लेच्छभूमिज मनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकनीयम् ?
दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात् । अथवा तत्कन्यानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात् ।

मान-म्लेच्छ भूमि के अनार्य भी दोनों तरह के निमित्त पाकर दीक्षा लेते हैं।

( लब्धिसार गा० १६५ टीका )

५-दीक्षायोग्यास्त्रयोवर्णाश्चतुर्थश्च विधोचितः
मनोवाकायधर्माय मता सर्वेऽपि जन्तवः।
उच्चावचजनप्रायः, समयोऽयं जिनेशिनाम् ।
नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठे-देकस्तम्भ इवालयः ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और संस्कारित शूद्र ये दीक्षा के योग्य हैं यानी अधिकारी हैं। जैनधर्म यह किसी खास जाति का धर्म नहीं है, किन्तु उच्च नीच सब मनुष्यों से संकलित धर्म है।

( यशस्तिलक चम्पू )

६ समाधि गुप्त मुनि ( चारित्र सार )

७ आचारोऽनवद्यत्वं, शुचिरुपस्कारः शरीर शुद्धिश्च।
करोति शूद्रानपि देव-द्विजातितपस्विपरिकर्म सुयोग्यान् ॥

( नीतिवाक्यामृत )

८ शूद्रोप्युपस्काराचार-वपुः शुध्यास्तु तादृशः !
जात्यादिहीनोपिकालादि-लब्धौह्यात्मास्ति धर्मभाक् ॥

( दि० पं० आशाधरकृत सागारधर्मामृतम् )

९—एवं गुणविशिष्टो पुरुषो जिनदीक्षाग्रहण-योग्यो भवति, यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि ।

( आ० कुन्दकुन्दकृत प्रवचनसार की आ० जयसेनकृत टीका )

१० धीवर की लड़की "काणा" क्षुल्लिका होकर व्रत करके स्वर्ग को गई ।

११=भैंसों तक के माँस को खानेवाले मृगध्वज ने मुनिदत्त मुनि से दीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों का नाश करके जगत्पूज्यता प्राप्त की ।

( दि० आराधनाकथाकोष, कथा-५५ )

१२-सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः, शुद्धैकवसनावृताः ।
सहस्रशो दधुः शुद्धाः, नार्यस्तत्रार्यिकाव्रतम् ।

(आ० जिनसेनकृत हरिवंशपुराण स० २ श्लोक १३३ )

"अशुद्ध वंश की उपजी सम्यक्दर्शनकार शुद्ध कहिये निर्मल अर शुद्ध कहिए श्वेत वस्त्र की धरन हारी हजारों रानी अर्यका भई अर कइ एक मनुष्य चारों ही वर्ण के पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत चार शिक्षा व्रत धार श्रावक भए अर चारों ही वर्ण की कइ एक स्त्री श्राविका भई और सिंहादिक तीर्यंच बहुत श्रावक के व्रत धारते भये । यथाशक्ति नेम लिये तिष्ट और देव सम्यक् दर्शन ने धारक अव्रत सम्यग्दृष्टि हुए जिन पूजा विषे अनुरागी भए ।

[ दि० पं० दौलतराम जैपुरवालेकृत हरिवंशपुराण स० २ श्लो० १३१ से १३५ की वचनिका जिनवाणी कार्यालय कलकत्ता से मुद्रित पृष्ठ २३ जै० २९–२३ ]

१३-गोत्र कर्म जीव के असली स्वभाव को घात नहीं करता, इसी कारण अघातीया कहलाता है । केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद अर्थात् तेरहवें गुणस्थान में भी इसका "उदय" बना रहता है,

इतना ही नहीं चौदहवें गुणस्थान में भी अन्त समय के पूर्व तक इसका "उदय" बराबर चला जाता है।

जैसा कि-गोमट० कर्म० गा० २७३,

अस्तित्व [ सत्ता ] तो नीच गोत्र का भी केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद तेरहवें गुणस्थान में भी बना रहता है, तथा चौदहवें गुणस्थान में भी अन्त समय के पूर्व तक पाया जाता है। यथा गो० क० गा० ६३६।

( बा० सूरजमानजी वकील का लेख 'अनेकान्त' व० २ कि० १ पृ० ३३ )

१४-गोत्रकर्म का बंधादि कोष्टक

| 11, 12, 13 गुणस्थान में | १४ वें गुणस्थान में |
|---|---|
| बंध ० | बंध ०-० |
| उदय ३ | उदय ३ —३ |
| सत्ता २ | सत्ता २-३ [ पृ० २१४ ] |

| स्थान | गोत्र उदय | गोत्र सत्ता | पृ० २१६ |
|---|---|---|---|
| गुण० १३ | १ | २ | २२० |
| गुण० १४ | १ | २-1 | |

( मोक्षमार्ग प्रकाशक भा० २ )

१५-अनंग सेना वेश्याने वेश्यावृत्ति छोड़कर जैनधर्म स्वीकार करके स्वर्ग पाया। मछली खानेवाले धीवर मृगसेनने यशोधर मुनि से व्रत ग्रहण किये। वेश्यालम्पटी अंजन चोर उसी भव सद्गति को प्राप्त हुआ। मांसभक्षी मृगध्वज और मनुष्यभक्षी शिवदास भी मुनि होकर महान पद को प्राप्त हुआ। चाण्डाल की अन्धी लडकी श्राविका बनी। वसुदेव और म्लेच्छ कन्या जरा के पुत्र जरत कुमारने मुनिदीक्षा ली थी। विद्युत्चोर मुनि हुआ। वगैरह २ अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।

( पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ कृत जैनधर्म की उदारता )

१६—नागकुमार ने वैश्यपुत्रियों से लग्न किया और अंत में मुनि दीक्षा धारण की। दिगम्बर मुनि सत्य की और दिगम्बर अर्जिका ज्येष्ठा का व्यभिचारजात पुत्र रुद्र दिगम्बर मुनि हो गया। कार्तिकपुत्र का राजा अग्निदत्त और उसीकी ही पुत्री कृति के संभोग से "कार्तिकेय" और "वीरमती" हुए. कार्तिकेय मुनि दीक्षा धारण कर दिगम्बर मुनि हुए।

( नंदलाल जैन कलकत्तावाले का लेख 'जैनमित्र' व० ४०, अं० २१ पृ० ४०८ )

१७-कार्तिकेय "भावलींगी" बनकर शुभ गति में गये।

( दि० पं० न्यामतसिंहकृत भ्रमनिवारण पृ० ६ )

**दिगम्बर**:—शूद्र अगर दिगम्बर मुनि हुआ तो मोक्ष के योग्य है ही, किन्तु इतने दिगम्बरीय प्रमाण होने पर भी दिगम्बर समाज शूद्रदीक्षा और शूद्रमुक्ति का निषेध क्यों करती है?

**जैन**—इस शंका का समाधान दिगम्बर विद्वान इस प्रकार करते हैं—

१—अतः दिगम्बराम्नाय के चरणानुयोग में शूद्रों को मुक्ति निषेध की जो व्यवस्था बांधी है, और शूद्र क्षुल्लकों के अलहदा बैठ कर एक लोहे के पात्र में आहार लेने की रीति पर आग्रह है, वह पीछे के आचार्यों का अपने देश और समय के अनुसार ( हिन्दुओं की प्रसन्नता के अनुकूल पृ० २५ ) चलाया हुआ व्यवहार है न कि जैनधर्म का विश्वव्यापी सिद्धान्त।

( दि० विद्वान् अर्जुनलाल सेठी कृत शूद्रमुक्ति पृ० २७ )

२-चाण्डाल के दर्शन से ब्राह्मण और वैश्य स्त्रियां अपने नेत्र धोतीं थीं और उन्हें मरवाती थीं। ( चित्तसंभूत जातक बौद्ध ग्रन्थ ) वेद का शब्द सुन लेने वाले के कानों में कीले ठोक दिये जाते थे ( मातंग जातक, सद्धर्म जातक )…

ब्राह्मण धर्म की पूरी छाप लगी हुई मालूम होती है, इसलिये उन्होंने ( दिगम्बरी आचार्यों ने ) शूद्रों से घृणा, आचमन आदि को जैनियों में भी रखना चाहा है।

( पं॰ परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थकृत चर्चासागर समीक्षा पृ॰ ५०-५१)

वस्तुतः दिगम्बर समाज में शूद्रमुक्ति के निषेध के लिये जो नैमित्तिक व्यवहार था उसको, बादके विद्वान् और खास करके भाषा टीकाकार और ब्राह्मणीय प्रभाव से प्रभावित ब्रह्मचारी वगैरहों ने एक जिनाज्ञा रूप बना लिया।

परमार्थ से जैनदर्शन में शूद्रमुक्ति की मना नहीं है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर बाहुबली को अनार्य मानते हैं।

जैन—यह झूठ बात है। कोई भी जैन शास्त्र बाहुबली को अनार्य नहीं मानता है। काल के प्रभाव से कर्मभूमि और अकर्मभूमिका परिवर्तन होता है। वैसे ही आर्यभूमि और यवनभूमि का परिवर्तन हो सकता है। वास्तव में बाहुबली यवन नहीं था, और वह भूमि भी यवनभूमि नहीं थी। बाहुबली की राजधानी के खंडहर संभवतः रावलपिंडी से करीब २० मील उत्तर में टक्सिला के नाम से विद्यमान है।

दिगम्बर—चौथे आरे में आर्य भूमि में म्लेच्छों का निवास नहीं माना जाता है।

जैन—यह आपकी मान्यता कल्पना मात्र है। दिगम्बर विद्वान तो यहां चौथे आरे में म्लेच्छों का होना मानते हैं।

प्रमाण देखिये।

१—चारित्रसार में खदिर भील और समाधिगुप्त मुनि का अधिकार है।

२—स्वदेशेऽनक्षरम्लेच्छान्, प्रजाबाधा विधायिनः।
कुलशुद्धि प्रदानाद्यैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः ॥ ७६ ॥
( आ० जिनसेनीय आदिपुराण, पर्व ४२, श्लो० ७९ )

३—उच्चैर्गोत्रोदयादेरार्याः नीचैर्गोत्रादयादेश्च म्लेच्छाः
( श्लोकवार्तिक, अ० ३, सूत्र ३७ )

४—तथान्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः परे स्युः कर्मभूमिजाः ॥
कर्मभूमि भवा म्लेच्छाः प्रसिद्धा यवनादयः।
स्युः परे च तदाचार-पालनाद् बहुधा जनाः ॥
( श्लोक वार्तिक, पृ० ३५० )

५—आर्य खंडोद्भवा आर्या, म्लेच्छा केचिच्छकादयः।
म्लेच्छ खण्डोद्भवा म्लेच्छा, अन्तरद्वीपजा अपि ॥

आर्य खंडोद्भव म्लेच्छ यह आर्य भूमि की बाशिन्दा चौथे आरा की म्लेच्छ जाति है।

( आ० अमृतचन्द्र कृत तत्वार्थसार अ० १, श्लो० २१२ )

ऐसे ही ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

सारांश—'यहाँ चौथे आरे में म्लेच्छ नहीं होते हैं' यह दिगम्बरीय मान्यता शूद्रमुक्ति के विरोध के सिलसिले में चलाई हुई कल्पना मात्र है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर समाज "स्त्री मुक्ति" मानता है यह ठीक है ?

जैन—दिगम्बर आचार्य भी स्त्रीमुक्ति के पक्ष में हैं और यह सर्वथा वास्तविक ही है।

दिगम्बर—स्त्री जाति में भिन्न २ प्रकार की त्रुटियां हैं अतः स्त्री मुक्ति नहीं पा सकती हैं, जैसे कि—

चित्ता सोहि ण तेसिं, ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं, इत्थीसु ण संकया झाणं ॥ २६ ॥

( आ० कुन्दकुन्दकृत सूत्र प्राभृत, गा० ११ )

णग्गो देवो णग्गो गुरु णग्गो पई तम्हा इत्थीणं।
ण होदि चित्तसोही, विणा सोहिं कधं चरणं ॥१॥

( लोकोक्ति )

जैन—महानुभाव ! त्रुटियां तो जैसी पुरुष में हैं वैसी ही स्त्री में हैं, फिर सिर्फ स्त्री ही मोक्ष में न जाय, यह क्यों ? तीर्थंकर की मातायें, ब्राह्मी वगैरह अर्जिकायें और सीता वगैरह सतीयां ये सब पवित्रता की आदर्श मूर्तियां है, सीताजी ने अग्नि प्रवेश किया इत्यादि बलिदान कथायें स्त्रियों की सात्विकता का गान करती हैं। मानें—स्त्री में ऐसी कोई त्रुटी नहीं है कि जो मोक्ष की बाधक हो।

जिस समाज में पूजनीय तीर्थंकर भगवान की शास्त्रोक्त चंदन पूजा वगैरह को देखने मात्र से ही ध्यानभंग—अस्थिरता महसूस होती है, उस समाज में नग्नता के कारण भी अस्थिरता होने का आक्षेप किया जाय तो संभवित है। किन्तु सतीस्त्रियों की कुरबानी सोची जाय तो उक्त आक्षेप निर्मूल हो जाता है।

दिगम्बर—स्त्रिओं में "अनृतं, साहसं माया" इत्यादि स्वाभाविक दूषण रहे हैं, इसका क्या किया जाय ?

जैन—स्त्रीसमाज में अधिक अज्ञानता के कारण ऐसा हो भी सकता है। किन्तु ये दूषण तो पुरुषों में भी काफी पाये जाते हैं। अधमाधम जीवन के लिये मेघमाली, दृढप्रहारी, अभाई नमुचि मंत्री, मुनिद्वेषी पालक, अलाउद्दीन, वगैरह अनेक दृष्टांत मौजूद हैं।

विपक्ष में राजीमती, चन्दनबाला, सीता, सुभद्रा इत्यादि के आदर्श जीवन भी प्रसिद्ध हैं।

भक्तामर श्लो० २२ में स्त्री की ही गौरवगाथा है, देवगण भी जन्मोत्सव के समय स्त्री की पूजा करते हैं, पांचों कल्याणक में स्त्री को धन्यवाद देते हैं, श्री तीर्थंकर भगवान चतुर्विध संघ की ४ आस्थानों में से २ आस्थान स्त्रीसमाज को देते हैं, उनको "णमो तीथस्स" पाठ से नमस्कार करते और कराते हैं। स्त्रीसमाज की समानता और पवित्रता के लिये इससे अधिक प्रमाण की जरूरत नहीं है।

दिगम्बर—स्त्री, स्त्रीपने में है इस भिन्नता का क्या किया जाय?

जैन—स्त्री और पुरुष में गति जाति काय योग पर्याप्ति बंधन लेश्या संघातन संहनन संस्थान त्रसादि संज्ञित्व दर्शन ज्ञान चारित्र आदि के जरिए कुछ भेद नहीं है; यदि भेद है तो सिर्फ शरीर रचना में ही "नामकर्म" के कारण भेद है। नामकर्म की पुद्गल विपाकी पिंडप्रकृतियां शारीरिक भेद कराती हैं॥

दिगम्बर—किन्तु पुरुषचिन्ह स्त्रीचिन्ह वगैरह तो द्रव्य वेद हैं, ऐसा माना गया है।

पुरिसित्थि-संढ-वेदो-दयेण पुरिसित्थिसंढओ भावे।
णामोदएण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा॥ २७०॥

(गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गा० २७०)

जैन—पुरुषचिन्ह वगैरह नाम कर्म की प्रकृति जरूर है किन्तु "द्रव्य वेद" है।

जैन—यह बेबुनियाद बात है। पुरुषादि की देहरचना नाम कर्म के अन्तर्गत है। औदारिक के अंगोपांगादि तीन भेद हैं

इनमें मूकता, अंधता इत्यादि पाये जाते हैं, उसी तरह लिंगभेद भी पाये जाते हैं, जो द्रव्यवेद नहीं किन्तु "नोकर्म्म" द्रव्य है। भैंस का दही निद्रा का "नोकर्म" है, इसी प्रकार तीनों लिंग क्रमशः तीनों वेद के "नो कर्म" द्रव्य हैं, यह सर्व साधारण दिगम्बर मान्यता है।

थी-पुं-संढशरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।

स्त्री पुरुष और नपुंसक का शरीर उनको "नोकर्म्म" द्रव्य रूप कर्म है।

(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड अधि० १, गा० ७६)

तत्त्वार्थ सूत्र-मोक्ष शास्त्र में द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के भेद बताये हैं जब कि द्रव्य वेद और भाव वेद का नाम निशान भी नहीं है। फिर भी वेद के ऐसे भेद मानना, यह नितान्त मनमानी कल्पना ही है। उन शरीरों को द्रव्य वेद मानने में और भी बाधा आती है। वेद यह मोहनीय कर्म का अंग है, गोम्मटसार जीवकांड गा० ६ का "वेदे मेहुणसंज्ञा" पाठ मैथुन संज्ञा में ही वेद का अस्तित्व बताता है; इस सत्य को कुचलना पड़ेगा। इसके अलावा जहाँ तक द्रव्य वेद है वहाँ तक द्रव्य मोहनीय कर्म का अस्तित्व मानना पडेगा, और केवलज्ञान का निषेध करना पडेगा। अन्ततः पुरुष चिन्हादि युक्त शरीर केवलज्ञान का अधिकारी ही नहीं रहेगा। दिगम्बर समाज को यह बात मंजूर नहीं है।

यह तो निर्विवाद मान्यता है कि—चार घातिया कर्म चाहे द्रव्य से विद्यमान हो या भाव से विद्यमान हो, केवलज्ञान को रोकते हैं किन्तु चारों अघातिया कर्म केवलज्ञान को नहीं रोकते हैं। साथ २ में यह भी निर्विवाद है कि पुरुष स्त्री व नपुंसक के शरीर न तो वेद है, न कषाय हैं, न मोहनीय हैं, किन्तु स्पष्ट रूप

से नाम कर्म है, अघातिया कर्म हैं, अतएव ये तीनों प्रकार के औदारिक शरीर केवलज्ञान के बाधक नहीं हैं।

दिगम्बर—"वेद कषाय नोकर्म" तो सामनेवाली व्यक्ति का शरीर भी हो सकता है।

जैन—अपने शरीर को छोड़कर सामनेवाली व्यक्ति के शरीर को "नोकर्म्म" मानना यह भी मनमानी कल्पना ही है। इस कल्पना के आधार पर तो यह भी मानना अनिवार्य होगा, कि कभी स्त्री-रमणेच्छा और पुरुष-रमणेच्छा इन दोनों विरोधी इच्छाओं का नोकर्म्म "द्रव्य पुरुष" ही हो। मगर ऐसा माना जाता नहीं है, अतः वह कोरी कल्पना ही है। वास्तव में सामने वाली व्यक्ति के बजाय अपने इन शरीरों को "नोकर्म्म" मानना, और "द्रव्य वेद कषाय" न मानना यही बात दिगम्बर आचार्यों को अभीष्ट है। इसके अलावा द्रव्य वेद और भाव वेद के बंध कारण कौन २ हैं? यह समस्या भी खड़ी हो जायगी, अतएव दिगम्बर आ० नेमिचन्द्रजी ने स्पष्ट कर दिया है कि "ताण णोकम्म दव्व-कम्मं तु"। ( गो० गा० ७६ )

दिगम्बर—'पाएण समा कहिं विसमा' गो० जी० गा० २७० इस पाठ से शरीर और वेदों में विषमता भी मानी जाति है। मान-पुरुष को पुरुष-वेदोदय होता है, स्त्री-वेदोदय होता है और नपुंसक वेदोदय होता है। इसी प्रकार स्त्री को एवं नपुंसक को भी तीनों प्रकार का वेदोदय होता है। सबको तीनों तरह की भावनायें महसूस होती हैं।

जैन—यह बात भी कल्पना रूप ही है, दिगम्बर शास्त्र भी इसे नामंजूर करते हैं।

इतना हो सकता है कि कामांध व्यक्ति सजातीय विजातीय का ख्याल न रक्खे और अप्राकृतिक प्रवृत्ति करे, किन्तु उनके

वेद कषाय में परिवर्तन नहीं होता है, और ऐसा करने को कोई शास्त्रीय प्रमाण भी नहीं मिलता है। अप्राकृतिक सेवन तो व्यवहार में भी अधमाधम माना जाता है। ऐसा पुरुष तो समवेदी स्त्री से भी गया गुजरा माना जाता है। मगर वह "स्त्री वेदी" ही बन जाय फिर तो पूछना ही क्या?

वास्तव में शरीर और वेदों में विषमता नहीं हो सकती है। आ० नेमिचन्दसूरि साफ लिखते हैं कि—सामान्यतया १२२ उदय प्रकृति में से मनुष्य गति में आठों कर्मों की क्रमशः ५, ९, २, २८, १, ५०, २ और ५ एवं १०२ प्रकृति का उदय होता है, पर्याप्त अपर्याप्त और तीन वेद इत्यादि सब इनमें शामिल हैं।

"पज्जत्ते वि य इत्थी वेदाऽपज्जति परिहीणो" ॥३००॥

अर्थ—पर्याप्त पुरुष ( मनुष्य ) को स्त्रीवेद और अपर्याप्ति सिवाय की १०० प्रकृति का उदय हो सकता है। माने-पुरुष को सारी जिन्दगी में कभी भी स्त्री वेद का उदय नहीं होता है।

( गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ३०० )

मणुसिणीए त्थीसहिदा, तित्थयराहारपुरिस
संढूणा ॥ ३०१ ॥

अर्थ—पर्याप्ता मनुषीणी को स्त्री वेद का उदय है, किन्तु अपर्याप्ति, तिर्थंकर नाम कर्म, आहारक द्विक, पुरुषवेद, और नपुंसक वेद सिवाय की ९६ प्रकृति का उदय हो सकता है। माने स्त्री को सारी जिन्दगी में कभी भी पुंवेद या नपुंवेद का उदय होता नहीं है, छठे गुणस्थान में जाने पर आहारक द्विक का उदय नहीं होता है। तेरहवें गुणस्थान की प्राप्ति होने पर तिर्थंकर पद का उदय नहीं होता है।

( गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ३०१ )

पुरुष वेद में स्त्री वेद आदि १५ को छोडकर १०७ प्रकृति का उदय होता है। (गा० ३२० ) स्त्री वेद में पुरुष वेद आदि १७ को छोडकर १०५ प्रकृति का उदय होता है। नपुंसक वेद में १४४ प्रकृति का उदय होता है। ( ३२१ ) उदय त्रिभंगी में भी तीनों वेदवाले को विषम वेदोदय नहीं माना है।

ये सब प्रमाण शरीर से विभिन्न वेदोदय की साफ २ मना करते हैं।

**दिगम्बर**—दिगम्बर समाज १ से ९ गुणस्थान तकके पुरुष माने दिगम्बर मुनि को तीनों वेद का उदय मानता है।

१-पं० बनारसीदासजी लिखते हैं कि—

जो भग देखी भामिनी मानें, लिंग देखी जो पुरुष प्रवानें।

जो विनु चिन्ह नपुंसक जोवा, कहि गोरख तीनों घर खोवा।

२-दिगम्बर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने भी अपने "स्वतंत्रता" लेख में साफ बताया है कि-दिगम्बर मुनि जो नग्न दशा में हैं, वें ९ वें गुणस्थानक तक तीनों वेदों को महसूस करते हैं, दिगम्बर मुनि को छठे गुणस्थान मै पुंवेद स्त्रीवेद या नपुंवेद का तीव्र उदय होता है। इत्यादि। ( जैनमित्र, व० ३१, अंक ४५, ४६, ४७ )

**जैन**-दिगम्बर मुनि को स्त्री वेद और नपुंसक वेद का अप्राकृतिक या निन्दनीय उदय मानना यह तो दिगम्बर विद्वानों की ज्यादती है। ऐसा वेदोदय होना यह तो नैतिक अधःपात है। यही कारण है कि-स्थानकपंथी जैन चान्दमलजी रतलामवाले ने "कल्पित कथा समीक्षा का प्रत्युत्तर" पृ० १६५, १६६ में दिगम्बर मुनि के बारे में कुछ सख्त लिख दिया है। शर्म की बात है कि दिगम्बर समाज अपने आगम उपलब्ध होने पर भी शास्त्रों के नाम पर दिगम्बर मुनि के लिये ऐसी झूठी बात चलाती है और

दिगम्बर मुनिओं को जगत के सामने निंद्य कलंकित जाहिर करती है, इस भूल को उसे सुधार लेना चाहिये। "काहिं विसमा" को झूठा जाहिर कर देना चाहिये और दिगम्बर मुनिमंडली को इस निन्दनीय आक्षेप से बचा लेना चाहिये।

यदि दिगम्बर शास्त्र छट्टे गुणस्थान में द्रव्य स्त्रीवेद और द्रव्य नपुंसक वेद का उदय विच्छेद और नवमें गुणस्थान में तीनों भाव वेदका उदय विच्छेद बताते जब तो उन दिगम्बर मुनिओं के लिए तीनों वेद का उदय या काहिं समा काहिं विसमा मानना उचित ही था। मगर आ० नेमिचन्द्रजी डंके की चोट एलान करते हैं कि-मरद को नवमें गुणस्थान तक पुरुष वेदका उदय होता है, स्त्री वेदका उदय तो उसे कभी भी नहीं होता है (गा० ३००) एवं स्त्री को नव में गुणस्थान तक स्त्री वेद का उदय होता है, उसे कभी भी पुरुष वेद या नपुंसक वेद का उदय होता ही नहीं है (गा० ३०१)

अतः—पुरुष को तीनों वेद का उदय व वेदपरावर्तन मानना यह दिगम्बर शास्त्रों से खिलाफ सिध्धांत है। वास्तविक बात यही है कि—पुरुष स्त्री व नपुंसक उपशम या क्षपक श्रेणी से नवमें गुणस्थान को पाते हैं वहां तक उन्हें स्वस्ववेदोदय रहता है।

महान् व्याकरण निर्माता दि० आ० शाकटायन वेदकषाय के लिये व्यवस्था करते हैं, जिसमें भी वेद परिवर्तन को तर्कणा से भी अग्राह्य बताते हैं देखिये।

स्तन जघनादि व्यंगे, स्त्री शब्दोऽर्थे न तं विहायैषः
दृष्टः क्वचिदन्यत्र, त्वग्निर्माणकवद् गौणः ॥ ३७ ॥
'आपथ्या स्त्री' स्यादौ, स्तनादिभिस्त्रीस्त्रिया इति च वेदः
स्त्रीवेदस्त्वनुवृत्तः पन्यानां शतपृथक्त्वोक्तिः ॥ ३८ ॥

न च पुंदेहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च ।
भावः सिद्धौ पुंवत्, पुंसोऽपि न सिध्यतो वेदः ॥ ३६॥
पुंसि स्त्रियां स्त्रियां पुंसि, अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः ।
यतिषु न संवासादिः, स्यादगतौ निष्प्रमाणेष्टिः ॥ ४२ ॥
अनडुहा ऽनड्वाहीं, दृष्टवानड्वाहमनडुहारूढम् ।
स्त्रीपुंसेतरवेदो, वेद्यो नानियमतो वृत्तेः ॥ ४३ ॥
नाम तदिन्द्रिय लब्धेरिन्द्रियनिवृत्तिमिव प्रमाद्यङ्गम् ।
वेदोदयाद् विरचयेद्, इत्यतदङ्गे न तद्भेदः ॥ ४४ ॥
या पुंसि च प्रवृत्तिः, पुंसि स्त्रीवत् स्त्रिया स्त्रियां च स्यात् ।
सा स्वकवेदात् तिर्यक्वद् लाभे मत्तकामिन्याः ॥ ४५ ॥

अर्थात्—वेद कषाय का परिवर्तन नहीं होता है। पुरुष को स्त्री वेदोदय नहीं होता है। अतएव कीसी भी वेद के द्रव्यभाव भेद नहीं हैं स्त्री की शरीर रचना यह नामकर्म का ही भेद है। उसके अस्तित्व में केवलज्ञान हो सकता है एवं स्त्री मोक्ष की अधिकारिणी है।

**दिगम्बर**—स्त्री को पहिले के "तीन संहनन" का अभाव है अतः मोक्ष नहीं मिलता है। देखिए–

सन्ती छ स्संहडणो, वज्जदि मेघं तदोपरं चापि ।
सेवट्टादि रहितो, पण पण च दुरेग संहडणो ॥ ३१ ॥
अंतिम तिग संहडण स्सुदयो पुण कम्मभूमि महिलाणं ।
आदिम तिग संहड़णं, णत्थिति जिणेहिं णिदिट्ठं ॥ ३२॥
( गोम्मटसार कर्मकांड गा० ३१, ३२ )

माने-स्त्रियों को युगलिक काल में पहिले के तीन संहनन होते हैं पीछे के तीन संहनन नहीं होते हैं बाद में कर्मभूमि होते

ही स्त्रियों को पहिले तीन संहनन नहीं रहते हैं किन्तु अंत के तीन ही रहते हैं।

जैन—विज्ञान के नियमानुसार वस्तु की क्रमशः हानि वृद्धि होना यह तो ठीक बात है किन्तु आपने तो एक ही हुक्म से एक दम, एक नहीं, दो नहीं, किन्तु तीन २ संहननों का परिवर्तन कर दिया। वाह जी वाह ? क्या पहिले संहनन वाली सब एक साथ मर गई यानी उन सब को एक साथ में देह पलटा हो गया ? न मालूम ऐसी २ कई कल्पित बातें दिगम्बर शास्त्रों में दाखिल कर दी गई होंगी। वास्तव में दि० शास्त्र तो स्त्री वेद में छै संहनन का उदय मानते हैं। उक्त गा० ३१ में छै संहननों का विधान है। बन्धसत्वाधिकार में छै संहनन बताये हैं और गा० ३८८ गा० ७१४ इत्यादि कई स्थानों में स्त्री के लिये क्षपक श्रेणी व अवेदिपन वगैरह उल्लेख हैं। फिर भी स्त्रियों के लिये वज्र ऋषभनाराच वगैरह संहननों का निषेध करना यह तो किसी भाषा टीकाकार दिगम्बर विद्वान की ही नई सूझ है।

स्त्री मरकर छट्टे नरक में जाती है कि जहां पहिले तीन संहननवाले जा सकते नहीं है, इसीसे भी स्त्री को शुरु के ३ संहनन होना सिद्ध है।

दिगम्बर विद्वान् श्रीमान् अर्जुनलाल शेठी तो स्त्री मुक्ति पृ० २३ व २७ में उक्त गाथा को क्षपक ही बताते हैं और दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार स्त्रियों को छै संहनन का होना मानते हैं।

दिगम्बर—समकीती मरकर स्त्री वेद में नहीं जाता है, फिर स्त्री वेद में केवल ज्ञान कैसे होवे ?

जैन—समकीती मरकर मनुष्य गति में भी नहीं जाता है फिर तो मनुष्य को भी केवल ज्ञान नहीं होना चाहिये, आपके

हिसाब से तो सिर्फ देवों को ही केवल ज्ञान होना चाहिये।

दिगम्बर—स्त्री तीर्थंकर, गणधर, चौदपूर्ववेदी, जिन कल्पी, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, संभिन्नश्रुतादिलब्धियुक्त आहारक शरीर वाली, और मरकर अहमिन्द्र देव नहीं हो सकती है। फिर मोक्ष गामी कैसे हो?

जैन—ये सब मोक्ष के अनन्तर या परम्पर कारण नहीं हैं पुरुष इनको बिना पाये ही मोक्ष गामी होता है उसी तरह स्त्री भी इनको वगैर पाये ही मोक्ष गामिनी होती है जो साध्य के कारण ही नहीं हैं उनके अभाव में साध्य प्राप्ति का निषेध मानना यह ज्ञान कैसा?

मानलो कि जवाहरलालजी नहेरु हल को नहीं चला सकता है तो क्या राज्य को भी न चला सकेगा? एक मनुष्य डाक्टर या वकील नहीं है तो क्या राजा नहीं बन सकेगा? नरक से आया हुआ जीव चक्रवर्ती बलदेव या वासुदेव न हो सके तो क्या केवली भी न हो सके!

कभी २ ऐसा भी होता है कि परस्पर में भिन्न या असहयोगी शक्तियां एक साथ में ही नहीं रहती हैं दिगम्बर शास्त्रों में भी ऐसी परस्पर विरोध वस्तुओं का निर्देश है। जैसा कि—

मणपज्जव, परिहारो, पढमसुवसम्मत्त दोण्णिआहारा।
एदेसु एक पगदे, णत्थित्ति असेसयं जाणे॥

(गोम्म० जीव० गाथा ७२८)

जब इनमें से कोई भी एक होती है तब दूसरी तीनों वस्तुएं नहीं होती हैं। एवं उक्त तीर्थंकर पद वगैरह भी स्त्री वेद के असहयोगी हैं। अतः वे स्त्री वेद में नहीं रहते हैं। मगर इनके न रहने से मोक्ष प्राप्ति में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती है।

दिगम्बर शास्त्रों में भी स्त्री के असहयोगी कुछ बताये गये हैं। जैसा कि—

वेदा हारोत्तिय, सगुणोघं णवरं संढ थी खवगे।
किण्ह दुग—सुहतिलेसिय वामेवि णं तित्थयरसत्तं ॥

अर्थ–वेद से आहार तक की मार्गणाओं में स्वगुण स्थान की सत्ता है विशेषता इतनी ही है कि क्षपक श्रेणी में चढने वाले नपुंसक स्त्री और पांच लेश्या वाले मिथ्यात्वी को सत्ता में तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती है। माने स्त्री क्षपक श्रेणी में चढती है किन्तु तीर्थंकर नहीं बनती है।

( गोम्म० कम्म॰ गा० ३५४ )

मणुसिणीं पमत्तविरदे, आहार दुगं तु णत्थि णियमेण।

( गोम्मट सार जीव कांड गा० ७१५ )

अर्थ—मानुषीणी छट्टे गुण स्थान को पाती है किन्तु उसको आहारकाद्विक ( पं० गोपालदासजी वरैया के भाषा पाठ के अनुसार आहारक शरीर अंगोपांग ) नहीं होता है।

वेदाहारोत्तिय सगुण ठाणाण मोघ आलाओ।
णवरियं संढि-स्थीणं, णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥

अर्थ—वेद से आहार तक की १० मार्गणाओं में स्व स्व गुण स्थान के अनुसार आलापा होते हैं। फरक इतना ही है कि नपुं- और स्त्री को आहारकाद्विक ( आहारककाययोग आहारक मिश्र-काय योग, भा० टी० ) नहीं है।

माने स्त्री छट्टे गुण स्थान में जाती हैं, किन्तु उसे आहारक द्विक नहीं होता है।

यहां आहारक और तीर्थंकर प्रकृति के निषेध करने पर भी दीक्षा क्षपकश्रेणी या केवलज्ञान का निषेध नहीं किया है। कारण

यही है कि उनके अभाव में केवल ज्ञान का अभाव नहीं माना जाता है।

इससे स्पष्ट है कि स्त्री केवलिनी और मोक्ष गामिनी हो सकती है।

दिगम्बर—स्त्री आचार्य नहीं होती है और न पुरुष को शिक्षा देती है।

जैन—स्त्री "गणिनी" बनती है, स्त्री समाज की अपेक्षा से वह आचार्य पदवी है, वो "महत्तरा" भी बनती है। क्या स्त्री अपने पुत्र को उपदेश नहीं देती है? और वह ही उसको सन्मार्ग में लाने वाली है। स्वयं दीक्षा लेकर अनेक जीवों को धर्म में लाती है स्थापित कराती है।

दिगम्बर—दि० पं० न्यामतसिंह का मत है कि एक पुरुष जिस तरह हजारों स्त्रियाँ रख कर प्रति वर्ष हजारों संतान उत्पन्न कर सकती है। क्या स्त्री भी उस तरह कर सकती है? स्त्री वर्ष भर में १ बच्चा कर सकती है। इसलिये पुरुष सबल है स्त्री अबला है मोक्ष नहीं पा सकती है।

( सत्य परीक्षा पृ० ४४ भ्रम निवारण पृ० १२ )

जैन—यदि सन्तान की संख्या ही मोक्षगामीके बल-वीर्य का थर्मामीटर है तो सौ पुत्र के पिता ऋषभदेवजी सबल, दो संतान के ही उत्पादक युगालिक मध्यमबल और ब्रह्मचारी नेमिनाथजी वगेरह अबल माने जायँगे, इस हिसाब से तो भ० नेमिनाथ आदि को मोक्ष ही नहीं होना चाहिये था। उस थर्मामीटर से तो कुत्ता सबल और मनुष्य अबल माना जायगा। इतना ही क्यों? समूर्छम का आदि कारण सबल, और गर्भज का आदि कारण अबल ही माना जायगा। मोक्ष आपके इन सबलों की ही अमानत बनी रहेगी क्या?

महानुभाव ! ऐसी थोथी कल्पनाओं से क्या होता है ! मोक्ष में जाने वाला तो आत्मा ही है। यह निर्विवाद मत है कि सबल आत्मा मोक्ष में जायगी और निर्बल आत्मा संसार में परिभ्रमण करेगी। चाहे वह पुरुष हो या स्त्री।

दिगम्बर—सबल आत्मा उत्कृष्ट उर्ध्वगति करे तो मोक्ष में जाती है, उत्कृष्ट अधोगति करे तो सातवें नरक में जाती है। मध्यम बल आत्मा उत्कृष्ट गति करे तो ऊपर, बीच के देवलोक में और नीची बीच के नारकी स्थानों में जाती है। और अल्प बल आत्मा उत्कृष्ट रूप से शुरू २ के देवलोक में या शुरू २ के नरक में जाती है। इसलिये तय पाया जाता है कि जो आत्मा मोक्ष में जाने की ताकत रखती है वही सातवीं नरकी में जाने की ताकत रखती है और जो आत्मा मोक्ष की ताकत नहीं रखती है वह सातवीं नारकी की भी ताकत नहीं रखती है। यानी जो आत्मा सातवीं नारकी पाने को समर्थ है वही मोक्ष पाने को समर्थ है। सारांश यह है कि आत्मा की शक्ति उच्च या नीचे गति करने में ठीक समानता से काम देती है।

संघयणमें भी उत्कृष्टगति निम्न रूपसे बताई है :—

| संहनन | उ० ऊर्ध्वगति | उ० अधोगति |
|---|---|---|
| १ वज्रऋषभ० | मोक्ष | ७ नरक |
| २ ऋषभनाराच | १२ देवलोक | ६ ,, |
| ३ नाराच | १० ,, | ५ ,, |
| ४ अर्धनाराच | ८ ,, | ४ ,, |
| ५ कीलिका | ६ ,, | ३ ,, |
| ६ सेवार्त | ४ ,, | २ ,, |

(जैनधर्मप्रकाश पु० ५६ अं० ४ सं० १९९१ आषाढ़ पृ० १०८)

अब इस नियम के अनुसार देखा जाय तो मानना अनिवार्य होगा कि स्त्री मोक्ष में नहीं जासकती है कारण १. स्त्री सातवीं नारकी में भी नहीं जासकती है।

देखिए आगम प्रमाण—

पढमं पुढवीमसण्णी, पढमं वितीयं च सरिसवा जंति।
पक्खी जाव दु तादियं, जाव दु चउत्थीं उरसप्पा ॥ ११२ ॥
आपंचमीति सीहा, इत्थिओ जंति छट्ठि पुढवि त्ति।
गच्छंति माघवीति, मच्छा मणुया य ये पावा ॥ ११३ ॥
उवाट्टिया य संता, णेरइया तमतमादु पुढवीदो।
ण लहंति माणुसत्तं, तिरिक्खजोणी मुवणयंति ॥ ११४ ॥
छट्ठीदो पुढवीदो, उवाट्टिदा अणंतर भवम्मि।
भज्जा माणुसलंभे, संजमलंभेण उ विहीणा ॥ ११६ ॥
होज्ज दु संजमलाभो, पंचमखिदि-णिग्गतस्स जीवस्स।
णत्थी पुण अंताकिरिया, णियमा संकिलेसेण ॥ ११७ ॥
होज दु णिव्वुदिगमणं, चउत्थीखिदि णिगतस्स जीवस्स।
णियमा तित्थयरत्तं, णत्थित्ति जिणेहिं पण्णत्तं ॥ ११८ ॥
तेण परं पुढवीसु, भयणिज्जा उवरिरमा हु णेरइया।
णियमा अणंतरभवे, तित्थयरस्स उप्पत्ती ॥ ११९ ॥
णिरयेहिं णिग्गदाणं, अणंतरभवम्मि णत्थि णियमादो।
बलदेव वासुदेवत्तणं च तह चक्कवाट्टित्तं ॥ १२० ॥

(आ० वट्टेरककृत 'मूलाचार', परिच्छेद १२)

असन्नी खलु पढमं, दोचं च सरीसया, तइय पक्खी ॥
सीहा जंति चउत्थीं, उरगा पुण पंचमीं पुढवीं ॥ १ ॥
छट्ठी य इत्थीयाओ, मच्छा मणुया य सत्तमीं पुढवीं।
एसो परमोवाओ, बोधव्वो नरय पुढवीसु ॥ २ ॥

अर्थ—पहिले नरक में असंज्ञी ( असैनी ), दूसरे में सरीसर्प, तृतीय में पक्षी, चतुर्थ में सिंह, पाँचवें में उरपरिसर्प, छट्ठे में स्त्री और सप्तम में मनुष्य व मत्स्य, जा सकते हैं। इस प्रकार सातों नरकों की उत्कृष्ट उत्पत्ति कही गई है।

यहाँ साफ २ है कि स्त्री सातवें नरक में नहीं जा सकती है तो गति की समानता के नियम से मानना ही पड़ेगा कि स्त्री मोक्ष में भी नहीं जासकती है।

जैन—महानुभाव! उक्त संहनन वाले सभी जीव उक्त गति को अवश्य पा सकें ऐसा एकान्त नियम नहीं है किन्तु वे जीव उनसे आगे न जासके यह एकान्त नियम है। यह उत्कृष्ट उपपात की बात है जो सबको मंजूर है। इस सिध्धांत से तो वज्र ऋषभनाराच संहनन वाली स्त्री सातवे नरक में जावे या न जावे किन्तु मोक्ष में जा सकती है, इसमें किसी भी प्रकार से शंका का स्थान नहीं है।

मगर आपने गति समानता का जो नकसा खींचा है वह तो किसी की सनक मात्र है। ऐसा नियम भी नहीं है और हो भी नहीं सकता है। क्यों! कि—कोई नरक में जा सकते हैं, मोक्ष में जा सकते ही नहीं, कोई मोक्ष में जा सकते हैं नरक में जाते ही नहीं है, और कोई २ नीचे में विभिन्न नरकों में जा सकते हैं किन्तु ऊपर तो नियत स्वर्ग में ही जा सकते हैं

इस प्रकार जीव विरूपता या कर्म वैचित्र्य के कारण उर्ध्वगति

अधोगति में शक्ति भेद पाया जाता है। देखिए—

१-तीर्थंकर भगवान मोक्ष में ही जाते हैं नरक में जाते ही नहीं हैं तीर्थंकर के जीवन में कोई ऐसा कर्म बन्ध होता ही नहीं है कि वे नरक जांय।

२-अभवि मनुष्य सातवें नरक में जाता है मोक्ष में कतई नहीं जाता है यह कहना चाहिये वह मोक्ष पाने में असमर्थ है।

३—वासुदेव प्रतिवासुदेव नरक में ही जासकते हैं, मोक्ष में नहीं। देवलोक में भी नहीं। यहां गति की साम्यता नहीं रहती है।

४—युगलिक स्वर्ग में ही जाते हैं नरक में नहीं, फिर भी गति साम्यता कैसे मानी जाय ?

५-भूज परिसर्प, पक्षी, चतुष्पद, और उर परिसर्प, नीचे तो क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें नरक तक में जाते हैं। मगर ऊपर सिर्फ सहस्रार देवलोक तक ही जाते हैं। यहाँ तो गति साम्यता की कल्पना का फुरचे फुर्चा हो जाता है।

६-मत्स्य सातवें नरक में जा सकता है। मोक्ष में नहीं। यदि गति कार्य में साम्यता होती तो मत्स्य मोक्ष में भी चला जाता। मगर वह बेचारा ऊँचा अहमेन्द्र पद पाने में भी असमर्थ है।

७-स्त्री मोक्ष में जा सकती है सातवीं नरक में नहीं।

आगति के नियम में भी वैसी ही विचित्रता पाई जाती है, जैसा कि—

नारकी से आकर मनुष्य बना हुआ जीव तीर्थंकर बन सके, मोक्षमें जाय, नरक में भी जाय, किन्तु वासुदेव बलदेव या चक्रवर्ती न हो सके। यह आगति की विचित्रता है।

( मूलाचार, परिच्छेद १२, गाथा १२० )

वैमानिक जीव वहां से च्यवन पाकर शलाका पुरुष बन सकता है मगर अनुत्तर विमान से आया हुआ जीव सीर्फ वासुदेव हो सकता नहीं है। आगतिकी कैसी विचित्र घटना है?

( मूलाचार परिच्छेद १२, गाथा १२६, १३८ से १४१ )

इस प्रकार गति की असाम्यता के अनेक दृष्टांत शास्त्रों में अंकित हैं, वास्तव में गतिप्राप्ति की समानता नहीं मानी जाती है।

अतएव स्त्री सातवें नरक पाने में असमर्थ होने पर भी मोक्षको पा सकती है।

दिगम्बर—वासुदेव और प्रति वासुदेव शुद्ध अध्यवसाय के न होने के कारण मोक्ष पाने में असमर्थ हैं, भोगभूमि के युगलिक अशुद्ध अध्यवसाय के अभाव से नरक पाने में असमर्थ हैं, और मत्स्य शक्तिवान होने पर भी गति और शरीरादि भेद के कारण शुद्ध अध्यवसाय की अंतिम सीमा को नहीं पहुँच सकता है अतः मोक्ष पाने में असमर्थ है, किन्तु स्त्री मोक्ष पाने में समर्थ है तो सातवीं नरक पाने में असमर्थ क्यों है?

जैन—जैसे वासुदेव आदि में शुद्ध अध्यवसाय का अभाव है, युगलिक में अशुद्ध अध्यवसाय का अभाव है, मत्स्य में मोक्ष के योग्य शुद्ध अध्यवसाय का अभाव है वैसे ही अबला में स्त्री शरीर और मातृत्व होने के कारण सातवें नरक के योग्य अशुद्ध अध्यवसाय का अभाव है। वह चाहे जितनी क्रूर बनें, मगर पुरुष की समता नहीं कर सकती है। वासुदेव मत्स्य वगैरह अशुद्ध अध्यवसाय की आखिरी सीमा तक पहुँच जाते हैं। अतः वे सातवें नरक तक जाते हैं, किन्तु शुद्ध अध्यवसाय की सीमा तक नहीं जासकते हैं यानी मोक्ष में नहीं जा सकते हैं। वैसे ही स्त्री शुद्ध अध्यवसाय

की अंतिम दशा तक पहुँचती है। और मोक्ष को पाती है। किन्तु अशुद्ध अध्यवसाय की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचती है इसलिये सातवी नारकी में नहीं जा सकती है। यह सप्रमाण बात है कि किसी में उर्ध्वगति की सामर्थ्य विशेष है किसी में अधोगति की। अथवा यों भी कहा जाय कि किसी में बंध की सामर्थ्य विशेष है है किसी में निर्भरा की, तो भी ठीक है। स्त्रीका शरीर उत्कृष्ट आयु बंध के अभाव का उर्ध्व गति के, अधिक सामर्थ्य का, या उत्कृष्ट निर्भरा शक्ति का नमूना है। स्त्री की अशुद्ध भावना अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचती है।

परमाधामी पुरुष ही होता है स्त्री नहीं होती है, यह समस्या भी स्त्री जाति में आन्तरिक क्रूरता न होने का प्रबल प्रमाण रूप है।

**दिगम्बर**—स्त्री में शुद्ध भावना की विशेषता है और अशुद्ध भावना की अल्पता या मर्यादा है, इस के लिये प्रमाण क्या है?

**जैन**—आज कल का विज्ञान भी उक्त बात को ही पुष्ट करता है। पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि स्त्री नम्र होती है। मातृत्व भावना से ओत प्रोत रहती है। वह सर्वत्र अशान्ति के बजाय शान्ति को ही अधिक पसंद करती है। इस विषय में जनवरी सन् १९३८ ई० के "मोडर्न रीव्यु" में भिन्न २ विद्वानों के मत प्रकाशित हुए हैं (पृ० २७) जिनका सार निम्न प्रकार है।

स्त्री की हर एक अंगोपांग पुरुष की अपेक्षा भिन्न बनावट का है × × इसलिये स्त्रियों के शरीर में मधुरता व नम्रता अधिक पाई जाती है।

शारीरिक कमी होने पर भी स्त्रियों में वीरता व साहस पाया जाता है। जब संकट आता है तब स्त्री दृढ़ रहती है शत्रुओं से

अपने बच्चों की रक्षा करती है । और अपनी इज्जत बचाती है। यह वीरता मानसिक है, और शारीरिक बल से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

बौद्धिक क्षेत्र में स्त्री का दरजा पुरुष से नीचा है यह जाँच व अनुभव से सिद्ध है कि कुछ काम स्त्रियाँ अच्छा कर सकती है जब कि कुछ काम पुरुष अच्छा कर सकते हैं।

स्त्री का मन पुरुष की अपेक्षा भिन्न प्रकार का है हेतु यही है कि उनको माता पने का भारी काम करना पड़ता है। वे शान्ति से सहन कर सकती हैं, बलि कर सकती है जिन बातों की पुरुष में अयोग्यता है। माता के समान कोमल मन रखने वाली, स्त्री पुरुष के व्यवसायों में बराबरी नहीं कर सकती है।

( प्रो॰ कृष्ण प्रसन्न भूरूआ, सेंगविक साहब वगैरह )

स्त्रियों को शान्ति स्थापना की बहुत आवश्यकता विदित होती है।

स्त्रियाँ जिस प्रकार घर का प्रबन्ध बड़ी विज्ञता और अच्छाई के साथ कर लेती हैं वे उसी भाँति जगत में शान्ति को भी स्थापित कर सकती हैं। शान्ति स्थापक मंडली में बड़ी २ स्त्रियां मेम्बर हैं। लंडन की मिस व्हाईट ने एक पुस्तक लिखी है (Wanen in warld Histary ) इसमें दुनियाँ की स्त्रियों ने क्या २ वीरता पूर्ण काम किये हैं, उनका कथन है।

( मोडर्न रिव्यु पृ० ७९ केदारनाथ गुप्त का लेख )

दिगम्बर ब्रह्मचारी श्रीयुत शीतलप्रसादजी ने मोडर्नरिव्यु के उक्त लेख का सार दिया है और लिखा है—

"इस लेख का सार यह है कि स्त्रियों का शरीर, मन व उनकी बुद्धि औसत दरजे पुरुष के बराबर नहीं है इसलिये उनको कोमल

काम करने चाहिये"।

( जैन मित्र, व० ३६ अं० २३ पृ० ३६० ता० १४-४-३८ )

इन वैज्ञानिक प्रमाणों से निर्विवाद है कि स्त्री शान्ति की इच्छुका है, नम्र, वीर, साहसिक, सहनशील और कोमल होती है। उससे कठोर काम होना मुश्किल है। माने—स्त्री साहस, नम्रता, वीरता इत्यादि गुणों से कर्म की निर्झरा करने वाली और मोक्ष की अधिकारिणी है। पुरुष के योग्य कठोर काम करने में असमर्थ होने से सातवें नरक में नहीं जाती है।

इसके अलावा वर्तमान में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्री जाति में अधिक सहृदयता होने के अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं जैसे—खून, कतल, चोरी, बलात्कार, लूँट और दगाबाजी इत्यादि अधम कार्यों में फीसदी पुरुष और स्त्रियों की औसत कितनी २ है! इसका खुलासा अदालती दफ्तरों से मिल सकता है। साधारण तया ऐसे क्रूर कार्यों में मरदों की संख्या ही अधिक मिलेगी।

जब देवदर्शन, सामायिक, तपस्या इत्यादि कार्यों में तो स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कई गुनी बढ़ जाती है।

एक महर्षि ने ठीक ही कहा है

सप्तम्यां भुवि नो गतिः परिणतिः प्रायो न शास्त्राहवे।
नो विष्णु प्रतिविष्णु पातककथा यस्या न देशव्यथा॥
शीलात् पुण्यतनो जैनो मृदुतनोः तस्या प्रशस्याशयः
कः सिद्धिं प्रतिपद्यते न निपुणः तत्कर्मणां लाघवात्॥ २॥
अर्हत्जन्म महे महेन्द्र महिता लोकंपृणै र्या गुणैः॥ ३॥

इस प्रकार भिन्न २ प्रमाणों की उपस्थीति में मानना पड़ता है कि स्त्री सातवें नरक में न जाय, किन्तु मोक्ष में जाय, यह होना सर्वथा स्वाभाविक है।

माने—स्त्री मोक्ष में जाय, इस सिद्धांत में तनिक भी शंका नहीं है।

दिगम्बर—असल में तो स्त्री जिनेश्वर देव की अभिषेक आदि पूजा भी नहीं कर सकती है।

जैन—अनेकान्त दर्शन ऐसा संकुचित नहीं है कि जिसमें ईश्वर की पूजा के लिये भी पुरुष ही ठेकेदार हो।

भूलना नहीं चाहिये कि तीर्थंकर भगवान अवेदी हैं वीतराग हैं पतित पावन हैं मरद और जनाना उनके पुत्र पुत्री हैं इनके स्पर्श से उनको किसी भी प्रकार का वेदोदय नहीं होता है, अतः पुरुष और स्त्री तीर्थंकरदेव की सब तरह की पूजा कर सकते हैं करते हैं। तीर्थंकर की प्रतिमा लाखों के मन्दिर या रथ में बैठाने से सराग प्रतिमा नहीं मानी जाती है एवं स्त्री के स्पर्श से भी सराग नहीं मानी जाती है।

दिगम्बर शास्त्र भी स्त्री के लिये जिन पूजा बताते हैं। जैसा कि—

पूर्वमष्टान्हिकं भक्त्या, देव्यः कृत्वा महामहम्।
प्रारब्धा जिनपूजार्थं विशुद्धेन्द्रियगोचराः ॥ १४० ॥
चारुभिः पंचवर्णैश्च, ध्वजमान्यानुलेपनैः।
दीपैश्च बलिभिश्चूर्णैः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥ १४१ ॥

( आ० जटासिंह नन्दि कृत वरांग चरित्र स० १५ पृ० १४० )

उपोपविष्टा प्रभुनैव सार्द्धं।

( वरांग चरित्र स० २३ श्लो० ७१, पृ० २२७ )

कियत् काले गते कन्या, आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्यां महता चक्रुः मनोवाक्काय शुद्धितः ॥ ५६ ॥

तीन चन्द्र कन्याओं ने पूजा की ( गौतम चरि० अधि ३ )

बध्यते मुकुटं मूर्ध्नि, रचितं कुसुमोत्करैः।
कंठे श्रीवृषभेशस्य, पुष्पमाला च धार्यते ॥

कन्याने श्रा० शु० ७ के दिन ऋषभदेव भगवान को मुकुट और पुष्प माला पहिनाई।

(कथा कोश मुकुट सप्तमी कथा, चर्चासागर पृ० २१०, २११)

कन्या मुकुट चढ़ाते समय भावना भाती है कि "हे जिनवर आप मुक्ति स्त्री के वर हो इसलिये आपके लिये यह मुकुट और माला पहिनाये जाते हैं।

(मुकुट सप्तमी कथा पं० परमेष्ठीदास की चर्चासागर समीक्षा, पृ० १८१)

दिगम्बर—जब दिगम्बर समाज स्त्री दीक्षा का ही निषेध करती है तो फिर स्त्री को मोक्ष कैसे मिल सकती है।

जैन—दिगम्बराचार्य भी पाँचवे छट्टे और सातवें गुणस्थान की उदय विच्छेद प्रकृतिओं में स्त्री का निषेध नहीं करते हैं फिर कैसे माना जाय कि स्त्री को मुनि दीक्षा नहीं है।

देसे तदिय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरिय गदी।
छट्ठे आहारदुगं, थीणतिगं उदय वोच्छिण्णा ॥ २६७ ॥

(गोम्मटसार कर्म० गा० २६७)

पाँचवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानी ४ कषाय, तिर्यंच आयु, उद्योत, नीचगोत्र व तिर्यंचगति का, और छट्टे गुणस्थान में आहारक शरीरद्विक व निन्द्रा ३ का उदय व्युच्छेद होता है ॥२६७॥

सातवें गुणस्थान में सम्यक्त्व प्रकृति व अन्तिम ३ संहनन का उदयव्युच्छेद होता है॥२६७॥ इससे साफ प्रकट है। कि इन गुणस्थानों में स्त्री वेद या स्त्री जाति का निषेध नहीं है।

अतः वो मुनि दीक्षा ले सकतीं है। उसके "स्त्री वेद मोहनीय कर्म" का उदयविच्छेद नव में गुणस्थान में हो जाता है।

यदि नग्नता का ही आग्रह हो तो स्त्री के लिये नग्न रहना भी कोई मुश्किल बात नहीं है। देखो ? स्त्री पति आदि के निमित्त सर्वस्व बलि-कर देती हैं, भाँति २ के कष्ट सहती है, जिन्दा ही अग्नि में प्रवेश कर सती होती है, जौहर करती हैं तो वह धर्म के लिये कष्ट सहे तपस्या करें और नग्न बन कर रहें उसमें कौन सी अस्म-म्भव बात है ? अत एव दिगम्बर शास्त्र भी स्त्री दीक्षा की हिदायत करते हैं।

खुद तीर्थंकर भगवान ही चारों संघों में श्रमणी ( आर्जिका )का पवित्र स्थान रखकर स्त्रीदीक्षा फरमाते हैं। जहां आर्जिका का अभाव है वहां सम्पूर्ण जैन संघ ही नहीं है, इस हालत में स्त्रीदीक्षा भी अनिवार्य हो जाती है।

दिगम्बर—इसमें तो जरा सी शंका नहीं है कि स्त्रीदीक्षा सिद्ध है तो स्त्री मुक्ति भी सिद्ध है। ऊपर का अनुसन्धान स्त्री दीक्षा के पक्ष में है। किन्तु इस विषय में दिगम्बर शास्त्रों में साफ २ उल्लेख क्या है ! वह स्पष्ट कर देना चाहिये।

जैन—दि० शास्त्र स्त्रीदीक्षा और स्त्रीमुक्ति को स्वीकार करते हैं। कतिपय प्रमाण निम्न प्रकार है :—

दिगम्बर प्रथमानुयोग शास्त्रों के प्रमाण—

१—मन्त्रीश्वरामात्य पुरोहितानां पुरप्रधानर्द्धिमतां गृहिण्यः ।
नृपाङ्गनाभिः सुगति प्रियाभिः, दिदीक्षिरे ताभिरमा तरुण्यः
( जटाचार्य कृत वरांग चरित्र स० ३० श्लो० ८५ स० ३१ श्लो० ११३ )

२—भरतस्यानुजा ब्राह्मी, दीक्षित्वा गुर्वनुग्रहात् ।
गणिनीपद मार्याणां, सा भेजे पूजितामरैः ॥ १७५ ॥

रराज राजकन्या सा, राजहंसीव सुस्वना ।
दीक्षा शरन्नदी शील-पुलिन स्थल शायिनी ॥ १७६ ॥
सुंदरी चात्त निर्वेदा, तां ब्राह्मी मन्वदीक्षत ।
अन्ये चान्याश्च संविग्ना, गुरो प्राव्राजिषु स्तदा ॥ १७७ ॥

( आ० जिनसेन कृत आदि पुराण पर्व २४ )

शमिता चक्रवर्तीष्ट-कांतयाऽऽशु सुभद्रया ।
ब्राह्मी समीपे प्रव्रज्य, भाविसिद्धिश्चिरं तपः ॥ २८८ ॥
कृत्वा विमाने सानुत्तरे, ऽभूत्कल्पे ऽच्युते ऽमरः ॥

( —आदि पुराण पर्व—४७ )

३-जिनदत्तार्यिकाभ्यर्णे, श्रेष्ठीभार्या च दीक्षिता ॥ २०६ ॥

( आ० गुण भद्र कृत उत्तर पुराण पर्व ७१. देव की पुत्र पूर्वभव )

तथा सीता महादेवी पृथिवी सुन्दरी युताः
देव्यः श्रुतवती क्षांति-निकट तपसि स्थिताः ॥ ७१२ ॥
सीताजी अच्युत देवलोक में गई । ७१६ ।

( उत्तर पुराण पर्व ६८ सीताधिकार )

भ० महावीर स्वामी के साधु आर्यिका श्रावक और श्राविका की संख्या का वर्णन है । इनमें एलक क्षुल्लक का नाम निशान नहीं है ।

( महावीर संघ ) ( उत्तर पुराण प० ७४ श्लो० ३७१, ३७२ )

चंदना साध्वी ( उत्त० प० ७४ श्लो० ३७१ )
सुव्रतागणिनी, गुणवती आर्या ( उत्त० ७६ श्लो० १६५, १६७ )
पांचवे आरा की अन्तिम आर्यिका सर्व श्री ।

( उत्त० पर्व ७६-श्लो० ४३३ )

ये सब आर्याएँ पांच महाव्रत धारिणी थी, छट्ठे, सातवें गुण

स्थान की अधिकारिणी थी, श्रावक ( ब्रह्म० एलक क्षुल्लक आदि ) और श्राविका को पाँचवाँ गुण स्थान होता है।

४—राजीमती की दीक्षा ( पर्व० ५६ श्लो० १३० से १३४ ) द्रौपदी दीक्षा प्रयाण ( प० ६३ श्लो० ७८ ) धन श्री मित्र श्री की दीक्षा ( प० ६४ श्लो० १३ ) कुन्ती द्रौपदी सुभद्रा आदि की दीक्षा ( प० ६४ श्लो० १४४ ) जय कुमार मुनि १२ अंगपढ़ा, और सुलोचना आर्या ११ अंग पढी ( पर्व १२ श्लो० ५२ )

तीर्थंकर की आर्यिका की संख्या ( प० ६० श्लो० ५१-७८ )

( आ० द्वि० जिनसेन कृत हरिवंश पुराण )

५-सम्यक् दर्शन संशुद्धाः, शुद्धैक वसना वृताः ।
सदस्रशो दधुः शुद्धाः नार्य स्तत्रार्यिका व्रतम् ॥ १३३ ॥

अशुद्धवंश की उपजी सम्यक् दर्शनकार शुद्ध कहिजे। निर्मल अर शुद्ध कहिए श्वेत वस्त्र को धरनहारी हजारों रानी अर्यका भई।

( जिनवाणी कार्यालय-कलकत्ता से मुद्रित पं० दौलतराम जैपुर निवासी कृत हरिवंश पुराण स० २, श्लो० १३३ की वचनिका, पृ० २३-२८ )

६-वसुदेव की पत्नी प्रियंगुसुन्दरी ने जिनदीक्षा ली थी। ७-अनंग सेना नाम की वेश्या ने वेश्यावृत्ति को छोड़कर जिनदीक्षा ली और स्वर्ग को गई। ८-ज्येष्ठा आर्यिका ९-शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भु ने व्यभिचार किया. बाद में वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकांता अर्जिका के पास दीक्षा लेकर स्वर्ग गई।

दिगम्बरीय द्रव्यानुयोग शास्त्रों के प्रमाण—

१—दिगम्बरों के नन्दीगण पुन्नागवृक्ष और मूलसंघ के अनुयायी यापनीय संघवाले "यथायापनीयतंत्र" डंके की चोट

जाहिर करते है कि—

"णो खलु इत्थी अजीवो, ण या वि अभव्वा, ण या वि दंसण विरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारियउप्पत्ति, णो असंखिज्जाउआ, णो अइ कूरमइ, णो ण उवसंतमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोंही, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरण विरोहिणी; णो णवगुणठाण रहिया, णो अजोगा लद्धीए, णो अकल्लाण भायणं त्ति, कहं ण उत्तमधम्म सहिगात्ति" ।

( मुक्तवार्णी लक्षित विस्तरा० पृ० १०६ )

स्त्री जीव है, भव्य है सम्यक्त्व युक्त है, मनुष्य है, आर्योत्पन्न है, संख्याते वर्ष की आयु वाली है, अक्रूर बुद्धि वाली है, उपशान्त मोहनीय है, शुद्धाचारिणी है, शुद्ध बोधि है, व्यवसाय युक्त है, अपूर्वकरण साधिका है। नवम गुणस्थान सहित है, लब्धियोग्य है, कल्याण के पात्र रूप है, फिर भी वो उत्तम धर्म की साधिका नहि है, यह कैसे माना जाय?

२—दिगम्बराचार्य शकटायन फरमाते हैं कि—

मायादिः पुरुषाणामपि, द्वेषादि प्रसिद्ध भावश्च ।
षएणां संस्थानानां, तुल्यो वर्णो त्रयस्यापि ॥ २८ ॥
"स्त्री" नाम मन्दसत्वा, उत्संग समग्रता न तेनात्र ।
तत्कथ मनल्प वृत्तयः, सन्ति हि शीलाम्बुधेर्वेला: ॥ २६ ॥
संत्यज्य राज्य लक्ष्मी-पति पुत्र भ्रातृ बन्धु सम्बन्धम् ।
परिव्राज्य वहायाः कि मसत्वं सत्यभामादेः ? ॥ ३२ ॥
अन्तः कोटी कोटी स्थितिकानि, भवन्ति सर्वकर्माणि ।
सम्यक्त्व लाभ एवा, ऽशेषो प्यत्तयकरो मार्गः ॥ ३४ ॥
अष्टशत मेक समये, पुरुषाणा मादिरागमः॥ ३५ ॥
क्षपक श्रेण्यारोहे, वेदेनोच्येस भूतपर्वेण ।

स्त्रीति नितरामभि मुख्येर्थे युज्यते नेतराम् ॥ ४० ॥
मनुषीषु मनुष्येषु, चर्तुदशगुणोक्ति रायिकासिद्धौ ।
मात्रस्त वो परित्यप्य ०००० नवस्यो नियत उपचारः ॥४१॥
विगतानुवाद नीतौ, सुरकोपादिषु चतुर्दश गुणाः स्युः ।
नव मार्गणान्तर इति, प्रोक्तं न्नेदे ऽन्यथा नीतिः ॥ ४५ ॥
न च बाधकं विमुक्तेः, स्त्रीणामनु शासनं प्रवचनं च ।
संभवति च मुख्येर्थे, न गौण इत्यार्यिका सिद्धिः ॥ ४६ ॥

सारांश-पुरुष और स्त्री दोनों में माया आदि, द्वेप आदि, छे संस्थान वगैरह समान रूप से हैं। स्त्री राज्य लक्ष्मी पति, पुत्र, भाई बन्धु वगैरह को छोड़कर दीक्षा लेवे फिर भी उसे असत्य क्यों माना जाय?

एक समय में १०८ पुरुष मोक्ष में जाय, उसके अनुसन्धान में भी स्त्री मोक्ष सिद्ध है। क्षपक श्रेणी में "अवेदि" बनने के बाद भी वो पूर्वकाल की अपेक्षा से स्त्री मानी जाती है। मनुष्य और मनुषिणी दोनों १४ वे गुण स्थान में जाते हैं तब तो आर्यिका-मोक्ष स्वयं सिद्ध है।

नव मार्गणाद्वार में पुरुष व स्त्री के लिये एकता है सिर्फ वेद में पुरुष और स्त्री को भेद है। स्त्री मुक्ति का बाधक कोई प्रमाण नहीं मिलता है, स्त्री मुक्ति की आज्ञा व प्रवचन मिलते हैं।

( स्त्री मुक्ति प्रकरण )

३—दिगम्बर भट्टारक देवसेन लिखते हैं कि—

आ० जिनसेन के गुरुभ्राता विनयसेन के शिष्य कुमारसेन ने सं० ७५३ में काष्ठासंघ चलाया, और स्त्री दीक्षा की स्थापना की (दर्शन सार गा० ) इतिहास कहता है कि श्वेताम्बर दिगम्बर के भेद होने के बाद दिगम्बर समाज में स्त्री दीक्षा को स्थगित कर दिया था, तीन संघ का ही शासन चल रहा था। अतः

मुमकिन है कि आ० कुमारसेन ने दिगम्बर आर्यिकासंघ चलाया।

४—आ० पूज्यपाद स्पष्ट करते हैं कि—

येनात्मना नुभूया हमात्म नैवात्मनात्मनि।
सोहं न तन्न सा नासौ, नैको न द्वौ न वा बहु ॥ २३ ॥

आत्मा आत्म भाव को पाता है तब उसे ज्ञान होता है कि मैं न पुरुष हूँ, न नपुंसक हूँ और न स्त्री हूँ। अर्थात् आत्मा आत्मा ही है, और मोक्ष में वही जाता है। पुरुष स्त्री, नपुंसक शरीर मोक्ष में नहीं जाते हैं।

त्यक्त्वैव बहिरात्मानम् ॥ २७ ॥

मैं पुरुष हूं, इत्यादि बहिरात्म भाव को छोड़ो।

यो न वेत्ति परं देहात् ॥ ३३ ॥

दृश्यमानमिदं मूढः, त्रिलिङ्ग मव बुध्यते ॥ ४४ ॥

बेचारा कम अक्ल आदमी मैं पुरुष हूं, मैं नपुंसक हूं, तू स्त्री है, ऐसा मानता है, जब कि मोक्षगामी आत्मा इन लिंगों से रहित है। उसके तो लिंग ज्ञानादि हैं।

शरीरे वाचि चात्मानं० ॥ ५४ ॥

शरीर को आत्मा मानना, यह अज्ञानता है। अतः पुरुष मोक्ष जाय, स्त्री नहीं, इत्यादि कहना भी अज्ञानता है।

जीर्णे स्वदेहे प्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

इसके अनुकरण में ऐसा श्लोक भी बन सकता है।

स्त्रियो देहे तथात्मानं, न स्त्रियं मन्यते बुधः।

स्त्री का शरीर होने से आत्मा स्त्री नहीं बनती है।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो भवः

न मुच्यन्ते भवात्तस्मात् ते ये लिङ्गकृताग्रहाः ॥ ८७ ॥

पुरुष या नग्न ही मोक्ष में जाते हैं इत्यादि लिंग के आग्रह से संसार बढ़ता है।

जाति लिंग विकल्पेन, येषां च समयाग्रहः ।
ते न आप्नुवन्त्येव, परमं पदमात्मनः ॥ ८६ ॥

मैं ब्राह्मण हूं मैं पुरुष हूं या नग्न हूं ऐसा आग्रह मोक्ष बाधक है।

४-आ० नेमिचन्द्रसूरि "स्त्री मोक्ष" का क्रम बताते हैं

( गोम्मटसार )

आहारं तु पमत्ते, तित्थं केवलिणि, मिस्सयं मिस्से ।

प्रमत्त गुण स्थान में आहारकाद्विक होता है।

( गोम्मट सार कर्मकाण्ड गा० २६१ )

अपमत्ते सम्मत्तं, अन्तिम तिय संहदीय ऽपुव्वम्मि ।
छच्चेव णोकसाया, अणियट्टिय भाग भागेसु ॥ २६८ ॥
वेदातिय कोह माणं, माया संजलण मेव ॥ २६६ ॥

अर्थ ७ अप्रमत्त गुण स्थान में सम्यक्त्व प्रकृति और अंत के तीन संहनन का, ८ अपूर्व गुणस्थान में हास्यादि छे कषायों का तथा ६ अनिवृत्ति गुण स्थान में तिन वेद और तीन कषायों का उदय विच्छेद होता है।

( गोम्मटसार कर्मकांड गा० २६८-२६६ )

माने-पुरुष स्त्री और नपुंसक ये तीनों ६ वें गुणस्थान को पाते हैं तब उनके वेदों का उदय विच्छेद है। बाद के गुण स्थान में उनको अपने २ वेद कषाय का उदय नहीं होता है उनको नाम कर्म का उदय विद्यमान होने के कारण शरीर की रचना मात्र रहती है और वे अवेदी माने जाते हैं।

पज्जते वि इत्थी वेदाऽपज्जति परिहीणो ॥ ३०० ॥

७—ब्र० शीतलप्रसादजी ने मोक्ष मार्ग प्रकाशक भा० २ अ० ४ मोहनीयकर्म के सत्तास्थान में क्रमशः षंढ या स्त्री वेद के क्षय से १२ की, षंढ या स्त्री वेद में से शेष १ के क्षय से ११ की, हास्यादि ६ नौ कषाय के क्षय से ५ की, और पुंवेद के क्षय से ४ की सत्ता लिखी है। माने स्त्री को क्रमशः नपुंसकवेद स्त्रीवेद और पुंवेद का क्षय होता है (पृ० १७७-१७६)

८—पं० आशाधरजी सागार धर्मामृत के अ० ८ में स्पष्ट करते हैं कि—

यदौत्सर्गिक मन्यद्वा, लिङ्ग मुक्तं जिनैः स्त्रियाः
पुंवत्त दिष्यते मृत्यु काले स्वल्प कृतोपधेः । ८ । ३६

माने-स्त्री भी जिनोपदिष्ट मुनिलिंग-दीक्षा की अधिकारिणी है। इत्यादि।

दिगम्बर चरणकरणानुयोग शास्त्रों के प्रमाण—

१—अज्जा गमण काले, ण अत्थि दव्वं तधेव एक्केण।
ताहिं पुण संल्लाओ, ण य कायव्वो अकज्जेण॥ १७७
तासिं पुण पुच्छाओ, इक्किस्से णय कहिज्ज एकोदु।
गणिणी पुरओ किच्चा, जदि पुच्छइ तो कहे दव्वं १७८

साधु और अर्जिकाओं को आपस २ में उक्त प्रकार से वर्ताव करना चाहिये।

(आ० वट्टेरक कृत मूलाचार अ० ४ श्लोक १७७-१७८)

२—दिणपडिम वीरचरिया तियाल जोगे णियमेण।
सिद्धांत रहस्सा धयणं, अहियारो णत्थी देस विरियाणं

(आ० वसुनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्ती कृत श्रावकाचार)

वीरचर्या च सूर्यप्रतिमा, त्रिकाल योग धारणं नियमश्च।
सिद्धान्त रहस्यादि ष्वध्ययनं, नास्ति देश विरतानाम्॥

(श्रावकाचार व० २४१ पृ० ५००)

श्रावको वीरचर्याहः-प्रतिमा तापनादिषु ।
स्यान्नाधिकारी सिद्धांत-रहस्याध्ययने पि वा ॥

( धर्मामृत-श्रावकाचार )

त्रिकालयोग नियमो, वीरचर्या च सर्वथा ।
सिद्धांताध्ययनं सूर्य-प्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥

( धर्मोपदेश पीयुष वर्षा कर श्रावकाचार )

इन पाठों में श्रावक और श्राविका के लिये सिद्धांत वांचना का निषेध किया गया है, अतः मुनि और अर्जिका ही सिद्धांत वाचना के अधिकारी हैं। मुनि दोनों जिनदीक्षा वाले हैं पांच महाव्रत के धारक हैं सर्वविरति हैं, छठे गुणस्थान के अधिकारी हैं अत एव आगम के भी अधिकारी हैं। श्रावक वैसे न होने के कारण सिद्धान्त पाठ के अधिकारी नहीं है।

दिगम्बर हरिवंश पुराण में दृष्टान्त भी है कि जिनदीक्षा लेने के पश्चात् जय कुमार ने १२ अंगों का और सुलोचना अर्जिका ने ११ अंगों का अध्ययन किया ( १२-५२ )।

३-सह समणाणं भणियं, समणीणं तहय होइ मल हरणं ।
वज्जिय तियालजोगं, दिणपडिमं छेदमालं च ॥ १ ॥

( दिगम्बर चर्चा सागर चर्चा १८६ )

मुनि-श्रमण और श्रमणिओं की प्रायश्चित्तविधि एक सी है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि श्रमणी के लिये त्रिकाल जोग, सूर्य प्रतिमा योग और छेदमाल का निषेध है।

४-महत्तराप्यार्यिकाभि वंदते भक्तिभाविता ।
अद्य दीक्षितमप्याशुव्रतिनं शान्तमानसं ॥

( नीति सार )

साधु और अर्जिका दोनों दीक्षा वाले हैं, इस हालत में छोटा-मुनि बड़ी अर्जिका को वन्दन करे यह स्वाभाविक था, मुनि पद की हैसियत से यह होना संभवित ही था, अतः उसमें यह विशेष व्यवस्था की गई है कि—महत्तरा भी नव दीक्षित मुनि को वन्दन करें। यद्यपि मुनि और अर्जिका ये सब पांच महाव्रतधारी

हैं, पूजनीक हैं। फिर भी उनमें आर्जिका गणिनी मुनि उपाध्याय आचार्य व गणधर वगैरह ये उत्तरोत्तर अधिक पूजनीक हैं।

यह व्यवस्था भी सहेतुक और आवश्यक है, इस व्यवस्था से उन सब का मुनिपद और उनकी उत्तरोत्तर प्रधानता सिद्ध होती है।

मौन—प्रस्तुत श्लोक आर्जिका के मुनिपद का एवं पुरुष प्रधानता का साधक है।

५-एवं दसविध पायच्छित्तं, भणियं तु कप्पववहारे।
जीदम्मि पुरिसभेदं, णाउं दायव्व मिदि भणियं ॥२८८॥
जं समणाणं वुत्तं, पायच्छित्तं तह जमायरणम्।
तेसिं चेव पउत्तं, तं समणीणं पि णायव्वं ॥ २८९ ॥

( आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपिंडम् )

६—मुनि और आर्जिका दोनों पांच महाव्रत आदि मूलगुण व उत्तर गुणों को स्वीकार करते हैं। और उनका पालन भी करते हैं।

दिगम्बरीय गणितानुयोग के प्रमाण—

(१) दिगम्बर समाज के परम माननीय आ० पुष्पदंत और भूतवलि फरमाते हैं कि—

मूलम्—चउण्हं खवा अजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण अठोत्तर सदं ॥ सू० ११ ॥

टीका-उक्कोस्सेण अट्ठुत्तरसयजीवा त्ति खवगसेढिं चडंति। ( पृ० ९३ )

अर्थ—चारों गुणस्थानों के क्षपक और अयोगिकेवली जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? प्रवेश की अपेक्षा एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्टरूप से एक सौ आठ हैं ॥ ११ ॥ पृ० ९२

मूलम्—सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोस्सेण। अट्ठुत्तर सयं ॥ सू० १३॥

अर्थ--सयोगिकेवली जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने है ? प्रवेश से एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्टरूप से एक सौ आठ होते हैं ॥ १३ ॥ पृ० ६५ ॥

मूलम्—मणुसिणीसु सासणसम्मइट्ठिप्पहुडि जाव । अजोगि केवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ! संखेज्जा ॥ सू ४६ ॥

अर्थ—मनुष्यनियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगि केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥४६॥ पृ० २६१

मूल—वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु पमत्तसंजद प्पहुडि जाव अणिअट्टि बादर सांपराइय पविट्ठ उवसमा खवा दव्व पमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ सू० १२६ ॥

अर्थ—स्त्रीओ में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्ति बादर सांपराय प्रविष्ट उपशमक और क्षपक गुणस्थानतक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं । संख्यात है ॥ १२६ ॥ पृ० ४१६ ॥

धवला टीका—पमत्तादीणं ओघरासिं संखेज्ज खंड कए एय खंडमित्थिवेद पमत्त दाओ भवंति इत्थिवेद उवसामगा दस १० खवगा वीस २० ॥ पृ० ४१६ ॥

अर्थ--प्रमत्त संयत्त आदि गुणस्थान संबन्धी ओघराशिको संख्यात से खंडित करने पर एक खंड प्रमाण स्त्रीवेदी प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थान वर्ति जीव होते हैं । स्त्रीवेदी उपशामक दश और क्षपक बीस हैं । पृ० ४१६ ।

मूलम्—णवुंसय वेदेसु -- पमत्तसंजय प्पहुडि जाव अणियट्टि बादर सांपराइय पविट्ठ उवसमा खवा दव्व पमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ सू० १३० ॥

टीका—इत्थिवेद पमत्तादि रासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तो णवुंसय वेद पमत्तादि रासी होदि ! कुदो ? इट्ठागग्गि समाणेण णवुंसय वेदोदयेण सणिदाणेण पउर सम्मत्त-संजमादीण सुपर्ल

भावादो। अप्पमत्तादि पाधोनि त्ति जाणावणट्ठं सुत्तं संखेज्ज गोहणो कओ। णपुंसयवेद उवसामगा पंच ५, खवगा दस १०। इत्थिवेद णपुंसय वेद पमत्ता अपमत्ता च पत्तिया चेव होंति त्ति संपहि ( संप्रति ) उवएसो णत्थि। पृ० ४१६।

अर्थ-प्रमत्त संयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्ति बादर सांपरायिक प्रविष्ट उपशमक और क्षपक गुण स्थानक तक ( नपुंसक ) जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं। ॥ १३० ॥ पृ० ४१८ ॥

मूलम्-सजोगिकेवली ओघं ॥ सू० १३४ ॥

टीका-सव्वपरत्थाणं पयदं ( अल्पबहुत्वं प्रकृतं )। सव्वत्थोवा णपुंसय वेदुवसामगा, ( तेसिं ) खवगा संखेज्ज गुणा। इत्थि वेदुवसामगा तत्तिया चेव, तेसिं खवगा संखेज्जगुणा। पुरिस वेदुवसामगा संखेज्ज गुणा। तेसिं खवगा संखेज्ज गुणा। णपुंसय वेद। अमत्त संजदा संखेज्जगुणा, तम्हि चेव पमत्तसंजदा संखेज्ज गुणा, इत्थिवेदे अप्पमत्त संजदा संखेज्ज गुणा, तम्हि चेव पमत्तसंजदा संखेज्ज गुणा। सजोगि केवली संखेज्ज गुणा। ( पृ० ४२२ )

इन सब सूत्र पाठों से स्पष्ट है कि-पुरुष १०८ स्त्री २० और नपुंसक १० क्षपक श्रेणी करते हैं एवं मोक्ष में जाते हैं।

( षट् खंडागम—जीवस्थान—द्रव्यप्रमाणुगम, धवला टीका, मुद्रित पुस्तक ३ रा )

वीसा नपुंसगवेया, इत्थीवेया य हुंति चालीसा।
पुंवेदा अडयाला, सिद्धा इक्कम्मि समयम्मि ॥

अर्थ—एक समय में एक साथ में पंढ २०, स्त्री ४०, और पुरुष ४८ सिद्ध होते हैं। माने-स्त्री और नपुंसक भी मोक्ष में जाते हैं।

इन सब पाठों से निर्विवाद सिद्ध है कि दिगम्बर शास्त्र स्त्री-दीक्षा और स्त्री-मुक्ति के पक्ष में हैं।

**दिगम्बर—**यह तो मानना ही पड़ेगा, कि स्त्री केवलिनी बनती है तो तीर्थंकर भी बन सकती है!

**जैन—**यद्यपि ऐसा होता नहीं है किन्तु अनन्त काल व्यतीत होने के बाद कभी स्त्री भी तीर्थंकर हो जाती है। मगर उस घटना

का समावेश आश्चर्य में हो जाता है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों अघटित घटनाओं का कभी २ होना भी मानते हैं और उसे आश्चर्य की संज्ञा देकर "किसी २ समय में ऐसा होजाता है" इतना ही उसके बारे में खुलासा करते हैं।

वर्तमान चौबीसी में मल्लिकुमारी उन्नीसवें तीर्थंकर हुए हैं। मगर यह आश्चर्य, माने अशक्य नहीं, दुशक्य घटना मानी जाती है अनेकान्तवादी ऐसी नैमित्तिक घटनाओं के बारे में एकान्त इन्कार भी नहीं कर सकते हैं।

दिगम्बर—यदि दिगम्बरीय शास्त्रों में भी, स्त्रीदीक्षा और स्त्रीमुक्ति का विधान है तो दिगम्बर समाज उनका निषेध क्यों करता है ?

जैन—दिगम्बर समाज नग्नता का एकान्त हामी है, इसी से उसको क्रमशः वस्त्र, वस्त्रधारी की मुक्ति, और सीलसीला में स्त्रीमुक्ति का निषेध करना पड़ा है। वास्तव में नग्नता की एकान्त मान्यता हट जाय तो स्त्री मुक्ति का निषेध की भी आवश्यकता नहीं रहेगी, अत एव अनेकान्तवाद के ज्ञाता दिगम्बर आचार्यों ने स्त्रीमुक्ति का भी कुछ २ उल्लेख भी किया है जिनको मैं ऊपर बता चुका हूं। इसके अलावा वैदिक साहित्य भी स्त्री को वेदाध्ययन और मुक्ति का कुछ निषेध करता है, उसके असर वाले ब्राह्मणों में से बने हुए ब्रह्मचारी और भट्टारकों ने भी उस विषय को संभवतः ज्यादा जोर दे दिया होगा। कुछ भी हो, किन्तु स्त्री दीक्षा और स्त्रीमुक्ति दिगम्बर शास्त्रों से भी सिद्ध है।

दिगम्बर—गीताजी अ० ६ के श्लोक ३२ में कहा है, कि—

मां हि पार्थ ! व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा स्तेपि यान्ति परां गतिम् ॥

इसके सामने जैनधर्म तब ही उदार विशाल और विश्वव्यापक बन सकता है जब कि शूद्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति का विधायक हो। ऊपर के प्रमाणों को देखकर हर एक विचारक को खुशी होगी कि दिगम्बर शास्त्र भी शूद्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति बनाते हैं, यह जैनों के लिये अभिमान की बात है। इतना ही नहीं किन्तु जैन दर्शन इस हालत में ही सर्वोपरि दर्शन है अनेकान्त दर्शन है।

जैन—इस बात को दिगम्बर समाज ठीक २ समझ ले तो जैन समाज में एक बड़े एकान्तआग्रह से खड़ा हुआ सम्प्रदायवाद का आज ही अन्त होजाय। अनेकान्तवादी जैनों का फर्ज है कि इसके लिये उचित प्रयत्न करें और जैनसंघ को पुनः अविभक्त संघ बनावें।

दिगम्बर—ऊपर के पाठों में षंढ दीक्षा और षंढ मुक्ति का भी विधान मिलता है तब तो षंढ मुक्ति भी दिगम्बर शास्त्रों से सिद्ध हो जाती है।

जैन—दिगम्बर शास्त्र नपुंसक को भी मोक्ष मानते हैं। मगर उसमें संभवतः इतनी विशेषता है। कि वो नपुंसक असली नहीं, किन्तु कृत्रिम नपुंसक होना चाहिये।

गोम्मटसार कर्म्म कान्ड गा० ३०१ में पर्याप्त स्त्री को पुरुष वेद और षंढ वेद के उदय की ही मना की है और पुरुष को सिर्फ स्त्री के उदय की ही मना की है। इसी से स्पष्ट है कि—पुरुष किसी निमित्त से षंढ बन जाता है, यह षंढ "कृत्रिम षंढ" है और यही मोक्ष का अधिकारी है।

जिनवाणी गांगेय को कृत्रिम नपुंसक मानती है और उसको मोक्ष गामी भी बताती है।

सारांश-दिगम्बर शास्त्र स्त्री मुक्ति के साथ षंढमोक्ष की भी हिदायत करते हैं माने "षंढ मोक्ष" मानते हैं

---

## प्रथम भाग समाप्त

---

॥ वन्दे वीरम् श्रीचारित्रम् ॥

# श्वेताम्बर-दिगम्बर

## (भाग-दूसरा)

### केवली अधिकार

दिगम्बर-वस्त्र परिग्रह नहीं है, मूर्छा परिग्रह है, और २ उपधि भी संयमकी रक्षाके लीए अनिवार्य उपकरण हैं। वस्त्रधारीको निर्ग्रन्थपद व केवलज्ञान हो सकता है। जैनमुनि एक घरसे सम्पूर्ण भीक्षा न लेवे, विभिन्न घरोंमें परिभ्रमण करके गोचरी ग्रहण करे, अजैनोंसे भी शुद्ध आहार लेवें, गृहस्थी अन्यलिंगी शूद्र स्त्री और नपुंसक भी मोक्षमें जाय। ये सब बातें दिगम्बर शास्त्रोंसे भी सिद्ध हैं, उसमें तनिक भी शंका का स्थान नहीं है। मगर श्वेताम्बरोंकी और २ कई बातें ऐसी हैं जो संशोधनके योग्य हैं।

जैन-प्रमाणोंसे व कसोटीसे सब बातोंका सत्य स्वरूप मिल जाता है, आपको दिगम्बर शास्त्रोंके ही प्रमाणोंसे ऊपरकी सब बातें सत्य व प्रामाणिक प्रतीत हुई हैं। इसी ही तरह और २ बातोंका निर्णय भी प्रमाणोंसे ही कर लेना चाहिये। आप प्रश्न करो, मैं प्रमाण बताऊं, आप शास्त्रके पाठ देखो, सोचो, और निर्णय कर लो। परस्परविरोधी बातोंके निर्णयमें एवं समन्वयमें, प्रमाण ही आयना है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर शास्त्रमें केवली भगवान के लिये कई विचित्र बातें लिखी हैं, वे सब हमको तो ठीक नहीं लगतीं हैं।

जैन-सिर्फ कहने मात्रसे ठीक-अठीक का निर्णय नहीं हो सकता है। केवली भगवान् कैसे होने चाहिये? इसका निर्णय

गुणस्थानकी व्यवस्था द्वारा ही हो सकता है। केवली भगवानमें जिस २ कर्मप्रकृतिका उदय विच्छेद हो जाता है, उस २ के कार्य का भी अभाव हो जाता है, यह सीधी-सादी बात है। तो आप उनकी उदय प्रकृति और उदय विच्छेद प्रकृति का विश्लेष करें, जिससे-केवलीओंकी रहन-सहन और प्रवृत्ति का बहुत खुलासा मिल जायगा।

दिगम्बर-केवली भगवानको १२२ उदय प्रकृतिमें से घातीये ४ कर्मकी सब प्रकृतियाँ और अघातिये ३ कर्मकी कुछ २ प्रकृतियां एवं ८० कर्मप्रकृतिओंका "उदय विच्छेद" हो जाता है, जो इस प्रकार है।

(१) १ मिथ्यात्वमोहनीय, २ आतप, ३-५ सूक्ष्मादि तीन। (२) ६-९ अनन्तानुबन्धी चार, १० स्थावर, ११ एकेन्द्रियजाति, १२-१४ विकलेन्द्रियजाति। (३) १५ मिश्रमोहनीय। (४) १६-१९ अप्रत्याख्यान चतुष्क, २० से २५ वैक्रीयादि षट्क, २६ नरकायु, २७ देवायु, २८ मनुष्यगतिआनुपूर्वि, २९ तीर्यंच०आनु०, ३० दुर्भग, ३१ अनादेय, ३२ अयशकीर्ति, (५) ३३-३६ प्रत्याख्यान चतुष्क, ३७ तिर्यंचआयु, ३८ उद्योत, ३९ नीचगोत्र, ४० तिर्यंचगति। इन ४० कर्मप्रकृतियोंका उदय विच्छेद होने पर मुनिपना प्राप्त होता है।

(६) ४१-४२ आहारकशरीर युग्म, ४३ स्त्यानर्धि, ४४ प्रचला प्रचला, ४५ निद्रानिद्रा इन ४५ प्रकृतिका उदय विच्छेद होने पर अप्रमत्त गुणस्थान प्राप्त होता है।

(७) ४६ सम्यक्त्व मोहनीय, ४७ सेवार्त, ४८ कीलिका ४९ अर्धनाराच। (८) ५०-५५ हास्यादि षट्क।

(९) ५६ नपुंसकवेद, ५७ स्त्रीवेद, ५८ पुरुषवेद, ५९-६१ सं.क्रोध मान माया। (१०) ६२ सूक्ष्म सं. लोभ। (११) ६३ नाराच, ६४ ऋषभ नाराच। (१२) ६५से८० ज्ञानावरणीय पंचक, दर्शनावरणीय चतुष्क, निद्रा, प्रचला, अंतराय पंचक। इन ८० प्रकृतिओंका उदय विच्छेद होनेसे मनुष्य केवली होता है।

(गोम्म० कर्म्म० गा० २६५ से २७०)

केवली भगवानको ४ कर्म और ४२ उत्तर प्रकृतिका "उदय" हो सकता है, वे इस प्रकार हैं।

(१३) १ शातावेदनीय या अशातावेदनीय, २ वज्रऋषभ नाराच संघयण, ३ निर्माण, ४-५ स्थिर-अस्थिर, ६-७ शुभ, अशुभ, ८-९ सुस्वर, दुस्वर, १०-११ शुभ विहायोगति, कुविहायोगति, १२-१३ औदारिकयुग्म, १४-१५ तैजस, कार्मण, १६-२१ संस्थानषट्क, २२-२५ रूप, रस, गंध, स्पर्श, २६-२९ अगुरु लघु, उपघात, पराघात उश्वास, ३० प्रत्येक शरीर।

(१४) ३१ शाता या अशातावेदनीय, ३२ मनुष्यगति, ३३ पंचेन्द्रिय जाति, ३४ सुभग, ३५-३७ त्रस, बादर, पर्याप्त, ३८ आदेय, ३९ यशःकीर्ति, ४० तीर्थंकर नाम, ४१ मनुष्यायु, ४२ उच्च गोत्र। इनमेंसे ३० प्रकृतिका उदय विच्छेद होनेपर "अयोगी गुणस्थान" और शेष १२ प्रकृति का उदय विच्छेद होने पर "सिद्ध पद" प्राप्त होता है।

(गोम्म० कर्म० गा० २७१, २७२)

वास्तवमें यह निश्चित है कि-केवली भगवान को तेरहवें गुणस्थानमें १२० बंध प्रकृतिओंमें से १ शाता वेदनीयका बंध (गोम्म० क० गा० १०२), १२२ उदय प्रकृतिओंमें से ४२ प्रकृतिओं का उदय (गा० २७१, २७२), १२२ उदीरणा प्रकृतिओंमें से शाता, अशाता और मनुष्यायु सिवाय की उदय योग्य ३९ प्रकृतिओंकी उदीरणा (गा० २७९ से २८१) और १४८ सत्ता प्रकृतिओंमें से ८५ प्रकृतिओंकी सत्ता (गा० ३४०, ३४१ कवि पुष्पदंतकृत 'अपभ्रंश महापुराण' संधि ९ गा०...) होती हैं।

केवली भगवानको ४ कर्म उदयमें रहते हैं—

१ आयुकर्म—केवली भगवानको मनुष्यायु उदयमें है, केवलज्ञान होने के बाद कोई केवली भगवान तो क्रोडों वर्षों से भी अधिक आठ वर्ष न्यून क्रोड पूर्व तक जिन्दे रहते हैं। उनका आयु अनपवर्तनीय होता है।

२ नामकर्म—आयुष्य है वहां तक शरीरस्थिति अनिवार्य है। इसीसे केवली भगवानको मनुष्य गति, औदारिक शरीर, संघयण, निर्माण, पंचेन्द्रियजाति वगैरह ३८ प्रकृति उदयमें होती है।

३ गोत्र—मनुष्यगति है-शरीर है वहां तक गोत्र भी रहता है। नीचगोत्र १४ वें गुणस्थान तक सत्तामें रहता है, किन्तु दीक्षा

लेने के बाद उदयमें नहीं आता है, मुनिको अयश दुर्भग अनादेयका उदय नहीं होता है वैसे नीच गोत्रका भी उदय होता नहीं है: उच्च गोत्रका उदय होता है। केवली भगवानको उच्च गोत्र उदयमें होता है।

४ वेदनीय कर्म-जहां तक आयु है-शरीर है वहां तक वेदनीय तो है ही। केवली भगवान को शाता और अशाता ये दोनों प्रकृति उदयमें आती हैं। यद्यपि ये अघातिये कर्म हैं पर वे अपना काम अवश्य करते हैं। केवली भगवान अनन्त वीर्यवाले हैं, किन्तु उदयमें आई हुई किसी भी प्रकृतिको रोक नहीं सकते हैं। आयुष्य को कम नहीं कर सकते हैं। नामकर्म को हटा नहीं सकते हैं और वेदनीय को दाव नहीं सकते हैं। केवली भगवान को उदय में आई हुई प्रकृति का संक्रमण भी नहीं होता है। देखिए दिगम्बरीय गोम्मटसार कर्मकांड में स्पष्ट है कि—

बंधुक्कट्टकरणं संकममोकट्टुदीरणा सत्तं।
उदयुवसाम णिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी॥

बंध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्ता, उदय, उपशान्त, निधत्त और निकाचना, ये दश करण (अवस्था) हर एक प्रकृति के होते हैं ॥४३७॥

आठवें "अपूर्वकरण गुणस्थान" तक ये दश करण रहते हैं।४४१।

आदिम सत्तेव तदो, सुहुमकसाओत्ति, संकमेण विणा।
छच्च सजोगित्ति तदो, सत्तं उदयं अजोगित्ति ॥४४२॥

(१०) सूक्ष्म संपराय गुणस्थान तक शुरुके ७ करण, (१३) सजोगि गुणस्थान तक संक्रमण विना के ६ करण, और (१४) सजोगी गुणस्थान में उदय और सत्ता ये २ करण ही रहते हैं ॥४४२॥

माने केवली भगवान् को संक्रमण, उपशान्त, निधत्त और निकाचना नहीं होते हैं, उदयमें आई हुई प्रकृति अपना फल देती है।

सत्तागत कर्मप्रकृति कुछ काम नहीं करती है, उदय में आई हुई प्रकृति अपना काम अवश्य करती हैं। इस प्रकार केवली भगवान को ४ कर्म की ४२ प्रकृतिओं का उदय होता हैं।

जैन—केवली भगवानको "४२ कर्म प्रकृति" उदय में रहतीं हैं केवली भगवान का वर्तन भी तदपेक्ष ही होगा।

प्रकृतिओं के विना खोले यथार्थ ज्ञान होना मुश्किल है अतः इनका अलग २ विचार और समन्वय करना चाहिये।

इसमें भी सबसे पहिले वेदनीय कर्म का विचार करो, कि बाद में और २ कर्म का विचार करना आसान हो जायगा।

दिगम्बर—वेदनीय कर्म का बंध १३ वे गुणस्थान तक, उदय १४ वे गुणस्थान तक, उदीरणा छठे गुणस्थान तक, (गो० क० गा० २७९ से २८१) और सत्ता १४ वे गुणस्थान तक होती है। इसकी शाता और अशाता ये दो प्रकृतियां हैं। १४ वे गुणस्थान तक दोनों प्रकृतियां उदय में रह सकती हैं। यह "जीवविपाकी" कर्म-प्रकृति है। जीवविपाकी ७८ हैं, जिनमें वेदनीय भी है। केवली भगवान को दोनों वेदनीय रहती हैं। और उसी के जरिये ११ परिषह होती हैं। देखिये

(१) मार्गाच्यवननिर्ज्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥

क्षुत् पिपासा० ॥९॥

एकादश जिने ॥११॥

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥१७॥

(दिगम्बर मोक्षशास्त्र अध्याय ९)

(२) उक्ता एकादश परीषहाः । तेभ्योऽन्ये शेषा वेदनीये सति भवन्तीति वाक्यशेषः । के पुनस्ते ?

क्षुत्-पिपास-शीतो-ष्ण-दंशमशक–चर्या-शय्या-वध–रोग-तृणस्पर्श-मलपरीषहाः ।

(आ० पूज्यपाद अपरनाम आ० देवनन्दिकृत सर्वार्थसिद्धि)

(३) (जिने) तेरहवें गुणस्थानवर्ति जिनमें अर्थात् केवलि भगवानके (एकादश) ग्यारह परिषह होती हैं। छद्मस्थ जीवों को वेदनीय कर्म के उदय से १ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंश मशक, ६ चर्या, ७ शय्या, ८ वध, ९ रोग, १० तृणस्पर्श और ११ मल ये ग्यारह परिषह होती हैं, सो केवली भगवान के भी वेदनीय का उदय है, इस कारण केवली को भी ११ परिषह होना कहा है।

(श्रीयुत पन्नालालजीकृत मोक्षशास्त्र भाषा टीका जैनग्रंथ रत्नाकर, ११ वां रत्न, पृष्ट ८३)

(४) एकादश बाकी रहीं, वेदना उदय से कहीं,
बाईस परीषह उदय, ऐसे उर आनिये ॥२५॥
बाईस परिषह, दि० जैनसिद्धान्त संग्रह पृ० १७७

इस प्रकार केवली भगवान को वेदनीय कर्मके उदय से ११ परिषह होती हैं। इन ११ परिषह का स्वरूप निम्न प्रकार है।

छप्पय—

१ क्षुधा २ तृषा ३ हिम ४ उष्ण ५ डंसमसक दुखभारी।
६ निरावरण तन ७ अरति ८ वेद उपजावन नारी ॥
९ चरया १० आसन ११ शयन १२ दुष्ट वायक १३ वध बन्धन।
१४ याचैं नहीं १५ अलाभ १६ रोग १७ तृण फरस होय तन ॥
१८ मलजनित १९ मान सनमान वश२० प्रज्ञा २१ और अज्ञानकर।
२२ दरशन मलीन बाईस सब साधु परीषह जान नर ॥१॥

दोहा—सूत्र पाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम ।
इनके दुख जो मुनि सहैं, तिन प्रति सदा प्रणाम ॥२॥

१ क्षुधापरीषह—अनसन ऊनोदर तप पोषत, पक्षमास दिन बीत गये हैं। जो नहीं बेन योग्य भिक्षाविधि, सूख अङ्ग सब शिथिल भये हैं॥ तब तहां दुस्सह भूखकी वेदन, सहत साधु नहीं नेक नये हैं। तिनके चरणकमल प्रति प्रति दिन, हाथ जोड़ हम शीश नमे हैं ॥३॥

२ तृषापरिषह—पराधीन मुनिवर की भिक्षा, पर घर लैंय कहैं कुछ नाहीं। प्रकृति विरुद्ध पारण भुंजत, बढत प्यास की त्रास तहां ही॥ ग्रीषमकाल पित्त अति कोपै, लोचन दोय फिरे जब जाहीं। नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवन्ते वरतो जगमाहीं ॥४॥

३ शीतपरीषह—शीत काल सब ही जन कम्पत, खड़े तहां बन वृक्ष डहे हैं। झंझा वायु चलै वर्षाऋतु, वर्षत बादल झुम रहे हैं॥ तहां धीर तटनी तट चौपट, ताल पाल पर कर्म दहे हैं। सहैं संभाल शीतकी बाधा ते मुनि तारणतरण कहे हैं ॥५॥

४ उष्णपरीषह—भूख प्यास पीड़े उर अंतर, प्रजुलै आंत देह सब दागै। अग्निस्वरूप धूप ग्रीषम की ताती वायु झाल सी लागै॥ पहाड ताप तन उपजति, कोपै पित्त दाह ज्वरजागै। इत्यादिक की बाधा, सहैं साधु धीरज नहिं त्यागैं ॥६॥

५ डंसमस्कपरीषह—डंस मस्क माखी तनु कार्टें, पीड़ैं वन पक्षी बहुतेरे। डसें व्याल विष हारे बिच्छू, लगैं खजूरे आन घनेरे॥ सिंह स्याल सुन्डाल सतावैं, रीछ रोज दुख देहिं घनेरे। ऐसे कष्ट सहैं सम भावन, ते मुनिराज हरो अघ मेरे ॥७॥

६ चर्य्यापरीषह—चार हात परवान परख पथ, चलत दृष्टि इत ऊत नहीं तानैं। कोमल चरण कठिन धरती पर, धरत धीर बाधा नहीं मानैं॥नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते, ते सर्वादि याद नहीं आनैं। यों मुनिराज सहैं चर्या दुःख, तब दृढकर्म कुलाचल भानैं॥

७ शयनपरीषह—जो प्रधान सोनेके महलन, सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं। ते अब अचल अंग एकासन, कोमल कठिन भूमि पर सोवैं॥ पाहन खण्ड कठोर कांकरी, गडत कोर कायर नहीं होवैं। पांचो शयन परीषह जीतैं, ते मुनि कर्म कालिमा धोवैं ॥१२॥

८ वधबन्धनपरीषह—निरपराध निर्वैर महामुनि, तिनको दुष्ट लोग मिलि मारैं। कोई खैंच खम्भ सें बांधैं, कोई पावक में पर-जारैं॥ तहां कोप करते न कदाचित्, पूरब कर्म विपाक विचारैं। समरथ होय सहैं वध बन्धन, ते गुरु भव भव शरण हमारैं ॥१३॥

९ रोगपरीषह—वात पित्त कफ श्रोणित चारों, ये जब घटैं बढ़ैं तनु माहीं। रोग संयोग शोक जब उपजत, जगत जाय कायर हो जाहीं॥ ऐसी व्याधि वेदना दारुण, सहैं सूर उपचार न चाहीं। आतम लीन विरक्त देह सों, जैन यती निज नेम निबाहीं ॥१८॥

१० तृणस्पर्शपरीषह—सूखे तृण अरु तीक्ष्ण कांटे, कठिन कांकरी पांय विदारैं। रज उड़ आन पड़े लोचनमें, तीर फांस तनु पीर विथारैं॥ तापर पर सहाय नहीं बांछत, अपने करसें काढ न डारैं। यों तृणपरस परीषह विजयी, ते गुरु भव भव शरण हमारैं ॥१९॥

११ मलपरीषह—यावज्जीव जल न्हौन तजो जिन, नग्न रूप वन थान खड़े हैं। चले पसेव धूप की वेला, उड़त धूल सब अंग भरे हैं॥ मलिन देह को देख महामुनि, मलिन भाव उर नाहिं करें हैं। यों मल जनित परीषह जीतैं तिनहिं हाथ हम शीष धरे हैं ॥२०॥

निर्ग्रन्थ को ये मोहनीय कर्मजन्य दूषण होते नहीं हैं। यह तो दिगम्बर शास्त्र से स्पष्ट है।

वह निर्ग्रन्थ अन्तर्मुहूर्त में केवली बनता है, तब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय कर्म का क्षय हो जानेसे उक्त १४ दूषणों के उपरांत अज्ञान, मद, निद्रा, हिंसा, जूठ व चोरी इत्यादि दूषणों से रहित हो जाता है।

इस विश्लेषणसे तय है कि-केवली भगवान के अज्ञानता वगैरह जो १८ दोष माने गये हैं वह ठीक है।

और दिगम्बर शास्त्रों में जो उक्त क्षुधा वगैरह १८ दूषण गिनाये हैं, वे सिर्फ सिद्धोंके हिसाब से हैं, मगर केवली भगवान से जोड़ दिये गये हैं, वो ठीक नहीं है।

वास्तव में क्षुधा वगैरह १८ दूषण केवलीके दूषण नहीं हैं; अज्ञानता आदि १८ दूषण ही केवलीके १८ दूषण हैं।

आचार्य पूज्यपादकृत "सिद्धभक्ति" श्लोक ६ और ८ से भी यह मान्यता अधिक पुष्ट होती है।

यद्यपि केवली भगवान को आहार निहार रोग मल परिषह उपसर्ग शाता अशाता चलना समुद्घात और मृत्यु ये सब देह प्रवृत्ति अवश्य होती हैं, किन्तु वे निरीह भाव से होती हैं।

दिगम्बरसम्मत शास्त्र में भी निर्देश है कि—

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन् नरामरान्, नापि शासनफलेषणातुरः ॥७३॥
काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो, नाभवंस्तव मुनेश्चिकिर्षया ।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो, धीर ! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥७४॥

(स्वामी समन्तभद्र का स्वयंभू स्तोत्र, स्तो० १५)

कायवाङ्मनसां सत्तायां सत्यामपि ॥

(बोधप्राभृत गा० ३५ टीका)

केवली भगवान् केवली समुद्घात करते हैं।

माने केवली भगवान को आहार वगैरह शारीरिक प्रवृत्तियां होतीं हैं।

दिगम्बर—केवली भगवान् नोकर्म्म आहार लेते हैं, कहा भी है कि—

कम्मा हारु असेसहं जीवहं । णोकम्माहारु विभवभावहं ॥
लेवाहारु वि दिसइ रुक्खहं । कवलाहारु णरोह तिरीक्खहं ॥
ओज्जाहारु पक्खि संघायहं । मणभोयणु चउदेव निकायहं ॥

(कवि पुष्पदंतकृत महापुराण, संधी ११ वी)

यहां विभव भाव में "णोकर्म" आहार और मनुष्य और तिर्यंच के लिये कवलाहार बताया है।

यद्यपि केवली भगवान् मनुष्य ही हैं, किन्तु वे "णोकर्म" आहार लेते हैं, कवलाहार नहीं लेते हैं। निद्रा का नोकर्म दही वगैरह पदार्थ हैं, वेदोदय का नोकर्म भोगांग है, वैसे शरीर आदि की अमुक नोकर्म वर्गणा है, केवली भगवान् उनका ही आहार लेते हैं। इसके लिये कहा है कि—

आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोट्ठाए।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु ॥१३४॥

आहार देखने से अथवा उसके उपयोग से, और पेटके खाली होने से तथा असातावेदनीय के उदय और उदीरणा होने पर जीवको नियमसे आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है।

(पं० गोपालदासजी बरैयाकृत भाषानुवाद)

उदयावण्णसरीरोदयेण, तद्देह—वयण—चित्तानाम् ।
णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं नाम ॥६६३॥
आहरदि सरीराणं, तिण्हं एयदर वग्गणाओ ।
भासा मणाणं णियदं, तम्हा आहारओ भणिओ ॥८६४॥

(गोम्मटसार, जीवकाण्ड)

माने—औदारिक वैक्रिय आहारक भाषा औरमनकी वर्गणाओं का ग्रहण करना, वही आहार है, केवली भगवान् "णोकर्म्म वर्गणा" का आहार लेते हैं।

जैन—णोकर्म्म वर्गणा का आहार लेना, उस आहार द्वारा

आठ वर्ष की छोटी अवगाहनामें केवल ज्ञान पाये हुए केवली भगवान के शरीर की क्रमशः ५०० धनुष तक वृद्धि होते जाना, खाली पेटको भरदेना, शाता अशाता वेदनीय के उदय को भोग लेना, भूख को शान्त करना और क्षुधा परिषह को जीतना, ये सब विकट समस्या हैं।

"नोकर्म्म आहार" तो विभव भाव में है। और कर्मयोगवाले जो कि अनाहारी हैं वे क्या विभव भाव में नहीं हैं? यदि मनुष्य कवलाहार करते हैं तो क्या केवली भगवान् मनुष्य नहीं हैं? क्या उनको मनुष्यायु मनुष्यगति और मानवी शरीर नहीं है? यदि नोकर्म्म वर्गणा ही आहार का कार्य करे तो गर्भकी व्यवस्था निरर्थक है, और २ आहार भी निरर्थक है, देवों का मनोभोजन भी फिजूल है, और क्षुधापरिषह यह कल्पना ही है। न अशाता को मौका मिलेगा न क्षुधा लगेगी, न आहारशुद्धि का प्रश्न उठेगा, न परिषह ही होगी और न क्षुधा परिषह को जीतना पड़ेगा। मगर शास्त्र तो केवली के लिये लम्बा आयुष्य, शरीर-वृद्धि, अशाता, भूख, तृषा, भूखपरिषह, रोग, चलना-विहार करना इत्यादि विधान करते हैं इतना ही नहीं किन्तु कई दिगम्बर शास्त्र तो कवलाहार का भी स्पष्ट उल्लेख करते हैं।

इस हालत में केवली भगवान् नोकर्म्म वर्गणा का आहार लेते हैं, यह कवलाहार के विपक्षमें मनस्वी कल्पना ही है।

दिगम्बर—केवली भगवान कवलाहार करें यह बात बुद्धि-गम्य नहीं है।

जैन—विना तेल दीपक जिस तरह नहीं जलता है उसी प्रकार विना आहार के शरीर नहीं टिकता है, यानी शरीर को आहार अनिवार्य है।

केवली भगवान् को औदारिक शरीर है, बड़ा आयुष्य है, अशाता वेदनीय है, भूख है, आहारपर्याप्ति है और लाभांतराय आदि का अभाव है।

फिर क्या कारण है कि वे आहार न करें?

दिगम्बर—केवली भगवान को अनन्त ज्ञान है।

जैन—ज्ञान और अज्ञान एकान्त विरोधि वस्तु है। अतः इन

दोनोंमें ही एक के बढने से दुसरे का ह्रास होता है, किन्तु ज्ञान के बढने से या घटने से भूख की हानि वृद्धि होती नहीं है।

भूख अज्ञताका फल नहीं है, इसी लीए ज्ञान या अज्ञान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आहार पाने से या भूख का कारण नष्ट होने से भूख शान्त हो जाती है, किन्तु ज्ञान बढने से भूख मीटती नहीं है। ज्ञान होने से अज्ञानता नष्ट होती है और उप-योग शक्ति प्राप्त होती है, भूख दबती नहीं है।

वास्तवमें ज्ञानावरणीय कर्म्म और भूख का परस्पर सहकार भाव नहीं है।

दिगम्बर–खाने से ज्ञान दब जायगा।

जैन–महानुभाव ! खाने-पीने से सामान्य या विशेष प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई ज्ञान दबता नहीं है। क्षायिक केवलज्ञान किसी से नहीं दबता है।

दिगम्बर–केवली भगवान को अनन्त दर्शन है।

जैन–दर्शनावरणीयकर्म और भूख का परस्पर में कोई सह-कार भाव नहीं है, खाना और देखना इनमें कोई सम्बन्ध नहीं है।

दिगम्बर–मायालोहे रदिपुव्वाहारं (गो० जी० गा० ६) इस कथनानुसार "आहार" मोह विपाक का फल है, कषाय होता है जब आहार होता है, तो माया और लोभ न होने से आहार नहीं रहता है। अतः अकषायी केवली भगवान् आहार न करें।

जैन–अधिक मायावी या बडा लोभी ही आहार लेवे, ऐसा देखने में नहीं आता है। कपटी भी खाता पीता है, सरल भी खाता पीता है, लोभी भी खाता पीता है, संतोषी भी खाता पीता है। कहीं कपटी या लोभी भी कम खाता है और सरल या संतोषी अधिक भी खाता है। इस प्रकार माया लोभ और आहार क्रिया में किसी भी प्रकार का अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध नहीं है।

दिगम्बर–खाना प्रमाद है अतः छठे गुणस्थानके ऊपर खाना बंद हो जाता है।

जैन–छठे गुणस्थानवर्ती जीव आहारक द्वय, स्त्यानर्धि प्रचलाप्रचला और नीद्रानींद्रा इन ५ प्रकृतिओं का उदयविच्छेद

करके सातवें अप्रमत्त गुणस्थान में जाता है। इनमें ऐसी कोई प्रकृति नहीं है कि जिससे खाने-पीने का निषेध हो जाय।

दिगम्बर-आहारक द्रय का उदय विच्छेद है।

जैन-इन आहारक द्रय से आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का विच्छेद होता है, न कि आहारग्रहण का।

दिगम्बर-अप्रमत्त दशावाला क्या खावे पीवे?

जैन-खाना प्रमाद नहीं है, खाते खाते तो शुद्ध भावना से कभी केवलज्ञान भी हो जाता है। अप्रमत्त को निद्रा और प्रचला का भी उदय होता है फिर खाने पीने का तो पूछना ही क्या?

दिगम्बर-केवली भगवान् अनन्त वीर्यवाले हैं, अतः क्षुधा को दबा देवे।

जैन-जैसे वे आयुष्य को नहीं बढ़ा सकते हैं और न घटा सकते हैं, वैसे ही क्षुधा को भी नहीं दबा सकते। उनको लाभांतराय भोगांतराय या कोई अंतराय नहीं है अतः आहारप्राप्ति का अभाव नहीं है, फिर क्षुधा को क्यों दबावें? अंतराय का क्षय होने से लब्धि होती है, किन्तु क्षुधा का अभाव नहीं होता है।

दिगम्बर-तीर्थंकर भगवान को स्वेद नहीं है तो आहार भी न होना चाहिये।

जैन-स्वेद तो निहार है, वह शरीर से निकलता है, आहार तो ग्रहण किया जाता है; इनकी समानता कैसे की जाय? फिर भी केवलीको तो स्वेद होता है, आहार भी होता है।

दिगम्बर-भूख वेदनीय कर्म की सहकारिणी है!

जैन-नही, वेदनीय कर्म भूख का सहकारी है। वेदनीय कर्म का उदय विच्छेद होते ही भूख का भी अभाव हो जायगा।

दिगम्बर-वेदनीय अघातिया कर्म है, मामूली है, वह उदय में आने पर भी कुछ नहीं करता है। और वे ११ परिषह भी उपचार से हैं। (सर्वार्थसिद्धि ९-११)

जैन-कर्म घातिया हो या अघातिया मगर उदय में आने से अपना कार्य अवश्य करता है, इतना ही क्यों केवलीको

समुद्धात भी कराता हैं। वेदनीय मामूली नहीं है, यदि मामूली होता तो सातवें गुणस्थान से ही वेदनीयकी उदीरणा की क्यों मना कर दी गई? मामूली था तो उसकी उदीरणा भी कुछ नहीं करने पाती। मगर उदीरणा का वहां से निषेध है, अतः वेदनीयकी ताकतका परिचय हो जाता है जिसकी उदीरणा का पहिले से निषेध है वह कर्म मामूली कैसे माना जाय? वह अपना कार्य अवश्य करता है और उसका फल अवश्य ही भोगना पडता हैं।

११ परिषह भी उपचार से नहीं हैं, सिर्फ उपचार से ही बताना था तो २२ ही क्यों न बताये? वास्तव में ११ परिषह भी उपचारसे नहीं हैं; परिषह परिषह के रूप में ही होते हैं और वे भी अपना कार्य अवश्य करते हैं।

आचार्य पूज्यपादजीने भी परिषहों का उपचार होना लिख दिया, किन्तु वह दलील कमजोर थी अत एव उन्होंने "न सन्तीति" कल्पना भी बताई, अन्ततः "एकादश जिने" इस पाठ के सामने वह कल्पना भी निराधार बन जाती है। वास्तव में केवली भगवान को ११ परिषह हैं और वे सहने पडते हैं।

दिगम्बर—मोहनीय कर्म न होने से वे सताते नहीं हैं।

जैन—अशाता वेदनीय व परिषह अपना २ कार्य करते हैं किन्तु उनसे केवली भगवान को ग्लानि नहीं होती है। कारण? अरतिका अभाव है। किन्तु इससे यह नहीं माना जाय कि केवली भगवान को अशाता व परिषह नहीं होते हैं।

दिगम्बर—कर्मप्रकृतिओं का आपस २ में संक्रमण भी होता है तो अशातावेदनीय का शाता के रूप में संक्रमण हो जायगा।

जैन—दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रसूरिने १३ वे गुणस्थान में संक्रमण की मना की है।

(गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ४४२)

अतः यहां संक्रमण मानना ही भूल है। अशाता वेदनीय अशाता रूप से ही उदयमें आवेगी, और उसको वैसे ही भोगनी पडेगी।

सारांश यह है कि-केवली भगवान को भूख प्यास वगैरह होते हैं और वे आहार पानी लेते हैं।

दिगम्बर-केवली भगवान किस कारणसे आहार लेवे? दिगम्बर शास्त्रमें आहार के त्याग और स्वीकार के लिये निम्न कारण माने हैं।

छहिं कारणेहिं असणं, आहारंतो वि आयरदि धम्मं।
छहिं चेव कारणेहिं दु, णिज्जुहवंतो वि आचरेदि ॥५९॥
वेणयं वेयावच्चे, किरियाट्ठाणेयं संजमट्ठाए।
तधापाण धम्मचिन्ता, कुज्जा एदेहिं आहारं ॥६०॥
आदंके उवसग्गे, तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीओ।
पाणिदया तवहेऊ, सरीरपरिहारं वुच्छेदो ॥६१॥

टीका-तितिक्षणायां ब्रह्मचर्यगुप्तेः सुष्टु निर्मलीकरणे,
सप्तमधातुक्षयाय आहारव्युच्छेदः ॥६१॥

ण बलाउसादु अट्ठं, ण सरीरस्सुवचयट्ठ तेजट्ठं।
णाणट्ठ संजमट्ठं, झाणट्ठं चेव भुंजेज्जो ॥६२॥

(मूलाचार परिछेद ६ पिंडविशुद्धि अधिकार)

जैन-केवली भगवान शरीर, संयम, धर्म और शुक्ल ध्यान आदि के कारण आहार लेते हैं, और आहारत्याग भी करते हैं।

दिगम्बर-दिगम्बरीय शास्त्रमें तीन आहार व चार आहार के त्यागरूप तपस्या है, जिसके नाम चतुर्थ भक्त छट्ठ अट्ठम दशम वगैरह हैं। देखिये-

(१) खवणं छट्ठ ट्ठम दसम खमणं, खमणं च छट्ठ अट्ठमयं।
खमणं खमणं खमणं, छट्ठं च गदेसिसमो छेदो ॥७८॥

( आ० इन्द्रनन्दिकृत छेदपींडम् )

(२) रत्ति गिलाणभत्ते चउविह एकम्हि छट्ठखमणाओ।
टीका-रात्रो व्याधियुते चतुर्विधाहारे ॥२९॥

( दिगम्बरीय छेद शास्त्रम् )

उपवासः प्रदातव्यः षष्टमेव यथाक्रमम् ॥३३॥

टीका–चतुर्विधे चतुष्प्रकारे अशने पाने खाद्ये स्वाद्ये च। उपवासः क्षमणं ॥

(प्रायश्चित्त चूलिका श्लो॰ ३३)

उपवास में गरम पानी पीने से उपवासका आठवां हिस्सा कम हो जाता है। +

(आ॰ सकलकीर्तिकृत प्रश्नोत्तरोपासकाचार पौषधोपवासकथन, चर्चासागर, चर्चा ३५.)

दिगम्बरोंकी तपस्याकी परिभाषामें छट्ट अट्ठम वगैरह शब्द-प्रयोग किये गये हैं इसी प्रकार सामान्य तपस्या के लीए "योगधारण" इत्यादि शब्दप्रयोग भी किये गए हैं। *

---

+ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी "अंग्रेजी जैन गजट" (जुलाई का सार) शीर्षक लेख में लिखते हैं कि:–

"नोट–भादों मास में जैन समाज में स्त्रीपुरुष बहुत उपवास करते हैं सो लाभप्रद है, ऊपर के वर्णन से यह सिद्ध है कि–चार प्रकार के आहारको त्यागते समय शुद्ध प्रासुक पानी रख लेना चाहिये।

यह बात अनुभवसे सिद्ध है कि–पानी के विना उपवासके दिन बहुत आकुलता हो जाती है। धर्मध्यान भी कठिनता से होता है। श्वेताम्बर समाज में पानी को रख कर उपवास करने का रिवाज है, सो ठीक विदित होता है। जिनको आकुलता बिल्कुल न होवे तो पानी भी न लेवें परन्तु डाक्टरी सिद्धान्त में पानी लेना लाभकारी है। गृहस्थ को हर अष्टमी चौदशको पानी लेते हुए उपवास करना ही चाहिये।"

(ता. २१–७–३९ वी. सं. २४६४ था. व॰ ९ का जैनमित्र, पु. ३९ अं. ३७ पृ॰ ५९४–५९५)

* आदिपुराणादि ग्रन्थोंमें छह महिना तपश्चरण के पश्चात् पारणा के लिए चर्याको जानेका उल्लेख है और अंतराय होने पर पुनः छह महिना का योग धारण करने का विधान किया गया है। इस तरह आदि पुराणादि ग्रन्थों से भी एक वर्ष में पारणा होने की बात सिद्ध हो जाती है।

(पं. परमानन्द जैन शास्त्रीका "त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें उपलब्ध ऋषभदेव चरित्र" लेख, अनेकांत व॰ ४, कि॰ ५. पृ॰ ३१० की टीप्पणी.)

यदि केवली भगवान आहार लेते हैं तो क्या उक्त्य तप भी करते हैं?

जैन—हाँ, वे आहार के अभावरूप तप भी करते हैं।

दिगम्बर—केवली भगवान के आहार और तप के लिये शास्त्र-प्रमाण दीजिये!

जैन—दिगम्बर शास्त्रों में केवली भगवान के आहार और तपके प्रमाण ये हैं।

(१) सर्व मान्य आ० श्री उमास्वातिजी कहते हैं—

एकादश जिने। ( तत्त्वार्थ० अ० ९ सू० ११ )

केवली भगवान को ११ परिषह होती हैं माने शुद्ध आहार पानी मिलने पर क्षुधा और प्यास का शमन होता है।

(२) आ० कुन्दकुन्द बताते हैं कि—

गइ इंदियं च काए, जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥३३॥

टीका—आहारे आहारकद्वयमध्येऽर्हत आहारकानाहारकद्वयं।

यहाँ टीकाकार ने आहारक शब्द बना लिया है वह उसका अनाभोग है। वास्तविक बात यह है कि—केवली भगवान आहार लेते हैं, नहीं भी लेते हैं, आहारी हैं, अनाहारी भी हैं॥

आहारो य सरीरो, तह इंदिय आण पाण भासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो, उत्तमदेवो हवइ अरुहो ॥३४॥
पंच वि इंदिय पाणा, मण वय काएण तिन्नि बलपाणा,
आणप्पाणप्पाणा, आउग पाणेण होंति दह पाणा ॥३५।

( बोधप्राभृत )

(३) आ० समन्तभद्रजी लिखते हैं कि—

बाह्यं तपः परम दुश्चरमाचरंस्त्वं।
आध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्॥
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्।
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥

( स्वयंभूस्तोत्र )